

प्रकाशक
साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ,
उदयपुर

मूल्य २।।।)

पृष्ठक
विद्यापीठ प्रेस, उदयपुर

वक्तव्य

साहित्य-संस्थान राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर विगत २१ वर्षों से उदयपुर और राजस्थान में साहित्यिक, मांस्कृतिक, ऐतिहासिक कला-त्मक सामग्री एवं शिलालेखों की शोध खोज, संग्रह, संपादन और प्रकाशन कार्य करता आ रहा है। विशेषकर साहित्य-संस्थान ने राजस्थान में यत्र तत्र बिखरे हुए प्राचीन साहित्य, लोक-साहित्य, इतिहास पुरातत्व और कला विषयक वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये निरन्तर प्रयत्न किया है। परिणाम स्वरूप लगभग ४० महत्वपूर्ण और उपयोगी ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। साहित्य-संस्थान के अन्तर्गत निम्न लिखित विभाग गतिशील हैं—

- (१) प्राचीन साहित्य-विभाग,
- (२) लोक साहित्य-विभाग,
- (३) इतिहास पुरातत्व-विभाग,
- (४) अनुसन्धान पुस्तकालय एवं अध्ययन गृह,
- (५) संग्रहालय-विभाग,
- (६) राजस्थानी प्राचीन साहित्य-विभाग,
- (७) गृध्याराज रासो एवं राणा रासो-संपादन संशोधन विभाग
- (८) भीष्म साहित्य-संग्रह-विभाग,
- (९) नव साहित्य-सृजन-विभाग,
- (१०) संस्थानीय मुख पत्रिका-‘शोध पत्रिका’ संपादन विभाग,

(११) संस्कृत-‘राज प्रशस्ति’ ऐतिहासिक महाकाव्य सम्पादन विभाग,

(१२) प्राचीन कला प्रदर्शनी विभाग,

इनके अतिरिक्त ‘सामान्य विभाग’ के अन्तर्गत अन्यान्य कई प्रवृत्तियों चलती रहती हैं। उनमें मुख्य २ ये हैं:—

(१) महाकवि सूर्यमल आसन भाषण माला

(२) म० म० डा० गौरीशंकर ‘ओमा आसन ’

(३) २५५५५ सघाट् प्रेमचन्द आसन ’ ”

(४) निबन्ध-प्रतियोगिताएँ

(५) भाषण प्रति योगिताएँ,

(६) कवि सम्मेलन

(७) साहित्यकारों एवं महाकवियों के जयन्ति-समारोह ।

इस प्रकार साहित्य-संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर अपने सीमित और अत्यल्प साधनों से राजस्थानी साहित्य, संस्कृति और इतिहास के क्षेत्रों में विभिन्न विघ्न बाधाओं के होते हुए भी निरन्तर प्रागतिक कार्य कर रहा है। राजस्थान के गौरव-गरिमा की महिमामयी भाँकी अतीत के पृष्ठों में अंकित है; पर आवश्यकता है, उसके पृष्ठों की खोलने की। साहित्य-संस्थान नम्रता के साथ इसी ओर अग्रसर है और प्रस्तुत पुस्तक साहित्य-संस्थान के तत्वावधान में तैयार करवाई गई है।

साहित्य-संस्थान के सप्राहकों ने अनेक स्थानों में घूम घूम और दूँद दूँद कर २०००० के लगभग छन्दों का और प्राचीन हस्त लिखित अनेक उपयोगी ग्रंथों का भी संग्रह किया है। इनमें विविध प्रकार के प्राचीन छन्द मुरझित हैं। विभिन्न प्रकार की ऐतिहासिक घटनाओं एवं व्यक्तियों आदि का वर्णन मिलता है। ये विभिन्न प्रकार के गीत और छन्द लामों की रंग्या में राजस्थान के नगरों, कस्बों एवं गाँवों में बिखरे

पड़े हुए हैं। इनके प्रकाशन से एक ओर साहित्यकारों को राजस्थानी साहित्य का परिचय मिल सकेगा, तो दूसरी ओर इतिहास सम्बन्धी घटनाओं पर भी प्रकाश पड़ेगा। साहित्य-संस्थान राजस्थान में पहली मस्था है, जो शोध-खोज के क्षेत्र में नियमित काम करती चली आरही है।

इस प्रकार के संग्रह अब तक कई निकाले जा सकते थे; किन्तु साधन सुविधाओं के अभाव में साहित्य-संस्थान विवश था। इस वर्ष प्राचीन राजस्थानी साहित्य और लोक साहित्य के प्रकाशनार्थ भारत सरकार के शिक्षा-विकास सचिवालय ने साहित्य-संस्थान के लिये कुपा कर ५७,०००) सत्तायन हजार रुपयों की योजना स्वीकार की है। इसी योजना के अन्तर्गत प्रस्तुत पुस्तक का भी प्रकाशन कार्य सम्पन्न हो सका है। ऐसे २ उपयोगी कार्यों को प्रकाश में लाने के कारण हमारी सरकार के गौरव में ही वृद्धि हुई है।

इस सहायता को दिलाने में राजस्थान के मुख्य मन्त्री माननीय श्री मोहनलालजी सुखाड़िया और उनके शिक्षा सचिवालय के अधिकारियों का पूरा योग रहा है। इसके लिये हम उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। साथ ही भारत सरकार के उपशिक्षा सलाहकार डा० डी० पी० शुक्ला, डा० मान तथा श्री मोहनसिंह एम. ए. (लन्दन) के भी अत्यन्त आभारी हैं, जिन्होंने सहायता की रकम शीघ्र और समय पर दिलवा दी। सच तो यह है कि उक्त महानुभावों की प्रेरणा और सहायता से ही यह रकम मिल सकी है और संस्थान अपने ग्रन्थों का प्रकाशन करवा सका है। भारत सरकार के राज्यशिक्षा मन्त्री डा० कालूनाथजी श्रीमाला के प्रति किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट की जाय ? यह तो उन्हीं का अपना कार्य है। उनके सुभाव और उनकी प्रेरणा से संस्थान के प्रत्येक कार्य में निरन्तर विकास और विस्तार होता रहा है और

भविष्य में भी होता ही रहेगा। इसी आशा और विश्वास के साथ हम उनका हृदय से आभार मानते हैं।

हमें विश्वास है कि हमारी भारत सरकार एवं राजस्थान सरकार इसी प्रकार साहित्य-संस्थान की प्रवृत्तियों के लिये सहायता एवं सहयोग देकर हमारे उत्साह को बढ़ाती रहेंगी, जिससे इस महान् देश की सांस्कृतिक प्राणभूत प्रवृत्तियों के द्वारा राष्ट्रीय चिर स्थायी कार्य किये जा सकें।

हम उन सब सज्जनों और विद्वानों के भी आभारी हैं, जिन्होंने इस कार्य के संकलन, सम्पादन और संशोधन में सहयोग एवं सहायता दी है।

विनीत
मोहनलाल व्यास शास्त्री
मन्त्री
साहित्य-संस्थान

विनीत
भगवतीलाल मट्ट
अध्यक्ष
साहित्य-संस्थान



सम्पादकीय

साहित्य सग्रह भी एक प्रकार से समुद्र रूप में कहा जा सकता है। यह प्रारंभ में वीर रस के कारण तूफान प्रशंसात्मक कविता के कारण तरंगित रूप में प्रकाशित हो आपके समक्ष आ चुका है। प्रस्तुत भाग में यह शांत रूप से उपस्थित है। काम, काय, लाभ, मोह, मद, मार्मिक रूपी भयंकर जल जीव भी इसके शान्त स्वरूप में लुप्त हो गये हैं। मध्यमें नीलिमा [गुदलापन] रूपी विकार भी नष्ट हो स्थिररूप से निर्मलता ने स्थान प्राप्त कर लिया है। चारित्र्य भी इसकी अमृतमय धारा के सम्पर्क से अच दूर हो गया है। इसमें अब यह तूफानी गड़-गड़ाहट नहीं रही तथा यह मर्यादित हो गया है। नौका रूपी काया अब सहज ही में पार की जा सकती है। भ्रमर [जल चक्र] में गिरने का खतरा नहीं रहा, गोता लगाने वाले इसमें से रत्न ही नहीं अपितु जल-शायी प्रभू को भी सहज ही में प्राप्त कर सकते हैं। मानस मराल को मुक्ति रूपी मुक्ता की अब प्राप्ति हो सकती है। इस सग्रह रूपी समुद्र की पूर्ति विविध कवियों द्वारा निर्मित काव्य धारा से हुई है।

इसके रचयिताओं में कान्हा चारदठ, आशा चारदठ, ईश्वरदास, ओपाजी, राठीड़ पृथ्वीराज, आदि के नाम विशेष श्लेषनीय हैं। जिनकी रचनायें त्रिताप नाशक एवं निवृत्ति दायक हैं। लोह मन को ईश्वर की ओर लगाने में सुम्यक सट्टा है। मान अपमान को भुलाकर प्रभु-भक्ति में ही अपना गौरव अनुभव कराने वाली है। ईश्वर के गुण गान के सामने राजा महाराजाओं का तो क्या शाहंशाह का यश गान भी कुछ नहीं, ऐसा अनुभव कराती है तथा अमृत्य से सत्य की ओर आकर्षित कराती रहती है साथ ही मृत्युमय से घाँबत कर अमरत्व को प्राप्त कराने वाली है।

ये रचनायें पढ़ने सुनने वाली के धीम-मार्ग से होती हुई हृदय-गम हो अंतरात्मा में सुंजार करती है।

आशा बारहठ प्रभू स्मरण में तल्लीन होकर रट लगाते हैं:—

“मेरो मन माधवे लागो. मद सूदने मुरारी ।

नारायणे रामे नरसिंघे, दामोदरं दातारे ॥”

ईश्वरदास की भी ईश्वर के प्रति असीम श्रद्धा झलकती है, उनके सर्वस्व एकमात्र प्रभु ही हैं—

“माधा मात तूं तात तूं प्राण दीवाण भू,

सरय तूं सहोबर तूं सखाई ।

सगो माजण सयण सामि तूं सांमला,

करम तू कुट्ये तूं कृत कमाई ॥”

ओपा भी ईश्वर भजन की प्रेरणा देते हैं, उनका कथन है कि हे प्राणी ! फिर इस जन्म भूमिपर तू नहीं आयागा । इसी लिये जवानी के आमोद प्रमोद छोड़कर प्रभु-स्मरण में लगजा ।

“जोषण का रमो बिहाणे उठ जासी,

आदर भजन तणो अभियास ।

प्राणिया कदे न आवे पाछो,

बळे न बीजा वागड़ यास ॥”

कान्हा बारहठ काल रूपी बिल्ली के मुँह में चबाने के भय से व्याकुल हो मुक्त होने के लिये करुणाकर प्रभु से याचना करते हैं—

“कान्ठियो कहे मोलि करुणाकर,

बिलव करिसी तो यात वरां ।

माया काळ मंजारी मुँहड़े,

करड़ी जतो पुकार करां ॥”

प्रभु ने कान्हा बारहठ की पुकार नहीं सुनी अतः उलहना (उपालभ) देते हैं कि हे प्रभो ! गिरि शिखर पर चलती हुई चौंटी की पद-ध्वनि तो आप सुन लेते हैं; किन्तु उच्चस्वर से पुकारने पर आप नहीं सुनते, ऐसा करना आपका कहाँ तक ठीक है ?

“चढ़ती पग भरे परवते चौंटी,

बितवो तेरा मैंचल विचार ।

कांड साँभळो नही करुणाकर,
प्रगंडे सादे करां पुकार ॥”

वे अपने आपका कपटी समझते हुए कहते हैं कि हे प्रभो !
आपसे छिपाकर कर्म करते हुए भी आपसे ही क्षमा याचना करता हूँ ।
अतः आप मेरे अज्ञान्य अपराधों को क्षमा कर तथा अपराधों की ओर
न देख मुझे तार (मोक्ष) दीजिये; [क्यों कि आप तरन-तारन हैं] ।

‘कान्हियो नृम सौं करम कीचे कपट,
आवि जाचे वळे तुहिज आगे ।
अनंत कर मून वळि इता मांगां अनंत,
मरां लेखो रखे तार मांगे ॥”

यद्यपि एक मात्र “राम” नाम का ही मुक्ति दाता मानते हैं और
सबसे यही सरल सुगम साधन भवसिन्धु से पार होने के लिये बतलाते
हैं । उनके समस्त शास्त्र एवं पुराणादि कुछ नहीं हैं ।

‘एकणि नामि पार उतरिये ।
पदिये किमा अटार पुराण ॥”

प्रभु चरणों में राता [रत अरुणवर्ण, रंगे हुए] को ही वे उज्ज-
वल रथेत (पवित्र) मानते हैं—

‘चित ज्यां हेत सहित हरि चरणे ।
राता ताइ उजला रहे’ ॥

पृथ्वीराज राघव (राठोड़) प्रभु की उदारता पर प्रकाश डालते
हुए भक्त-अभक्त पर समान कृपा होना कहते हैं । वे भगवान राम को
सम्बोधित करते हैं हे दशरथ नन्दन ! आपने एक [राघव] को
मोक्ष दान और दूसरे (विभीषण) को लका का दान देकर भक्त अभक्त
पर एक सी ही कृपा की

सारिखो आपरे हाथ दूसरथ सुतन,
इहू विध राकसां दान दीयो ॥”

उन्होंने अच्छा होना ईश्वर कृपा का फल और बुरा होना अपराध दुर्भाग्य का कारण माना है। इस प्रकार अच्छाई के लिए प्रभु पर कृतज्ञता प्रगट की है—

“रूढ़ो जको प्रताप रावलो,
भूंदो जिको अमोणो भाग ॥”

प्रभु के असीम गुणों पर प्रकाश डालते हुए कवि (वेदा) भक्त कहते हैं कि हे महापुरुष माधव ! यदि आप एक शरीर के लाख शरीर एक मस्तक पर लाखों मस्तक, एक २ मस्तक के लाखों मुख और एक एक मुख में लाखों जिह्वाएँ दें तो भी आपके गुणों का पार नहीं पा सकते।

“अंगदिये लाख अँगि-अँगि लख उतमँग,
उतमँग मुख चै लाख अनैत ।
मुखि-मुखि रसणि दिये लख मादव,
मुखि तो सका न सुगुण महंत ॥

साईंदास भूला कहते हैं—जिस भगवान केशव का दृढ़ विश्वास कर लिया उस शरीर का कालिमा कभी स्पष्ट नहीं कर सकती।

“काठी भइ ओलगत केसव,
तौ काठियो न होवत कोइ ॥”

अतः इन रचनाओं से हमें प्रभु स्मरण, अट्टा, सत्कार से भक्ति, सच्चीपुकार, प्रायश्चित्त, मोक्ष प्राप्ति का सरल मार्ग, प्रभु का भक्त, अभक्त पर प्रेम, प्रभु गुण गान का-असीमता, ईश्वर में दृढ़ विश्वास रखने से कालिका नाश आदि का ज्ञान हो जाता है।

आत्मोद्धार के लिये यह ‘भाग’ मनन करने योग्य है और ऐसे ही कवि तरण तारण के भक्त ही नहीं उनसे साक्षात्कार-प्राप्त किये हुए वसों के अंश माने जा सकते हैं, जो स्वयं तर गये और दूसरों के लिये तरजाने का साधन छोड़ गये हैं।

विषय-सूची

भाग १२

रचयिता कविः—

गीत मर्या

अजवा	१—२
आमा बारहठ	३
ईश्वरदास बारहठ	४ से ८
ओपाजी आदा	११—१२
कान्हा बारहठ	१३ से २६
कर्मसो आशिषा	२७
गुलजी आदा	२८
गोपालदाम	२९
चतुरमुज	३०
चन्द्रलाल भादा	३१
जयमल बारहठ	३२ से ३४
जसा आदा	३५
जगावन	३६
घना	३७
नन्दलाल मोतीमर	३८
नरसिंहदास गडिया	३९
पृथ्वीराज राठौड़	४० से ४८
परमानन्द विठ्ठ	४९
परमराम वैष्णव	५०—५१
पुढा संदायच	५२ से ६०

भगवानदान	६१
रूपा धारहठ	६२
शत्रुतराम आशिया	६३
वेदा	६४
शक्तिदानं छाद्यडा	६५
समरत्तसिंह	६६
साईदास भूला	६७से६८ तक
सूर्यमल आशिया	७०
सोम	७१
हरा	७२
हरिसिंह जगावत	७३
हम्मीर मेहड़	७४
हुकमी चन्द गडिया	७५-७६

प्राचीन राजस्थानी गीत

भाग १२

रचयिता—अन्नबा

—: गीत १ :—

मल्लख राण परगढ़ सरब बधाया मोतियां,

लार सुर कोढ़ तेतीस लाया ।

हिंदवानाय भीमेण री मदत हव,

उदैपुर गोरघननाथ आया ॥१॥

चढ़े खगराज गजराज चींतागतां,

देव सुख आरतां मंत्र दीधो ।

पट्टवं तणी अज सारतां जेण पर,

कमन पाधारतां मलो कीधो ॥२॥

हुओ धन प्रज रसण भजण धावन हुओ,

गग नावन हुओ गुरुदगामी ।

हितकर रांण रे भलां धावन हुओ,

नगर पावन हुओ सहस्त्र नामो ॥३॥

भीव रा हने नरदोख करसी भड़ां,

दोस मन धारमी तका दलसी ।

हुकम आवारसी तकां मुख होवसी,

भुरद रहसी जके द्वार मलसी ॥४॥

अर्थ:—तैतीस करोड़ देवताओं सहित श्री गोवर्धननाथ हिन्दूपति भीमसिंह की सहायता के लिए उदयपुर पधारे। यह देख कर महाराणा ने अपने कुटुम्बियों सहित उन पर मोतियों से भरे थाल न्यौछावर किए।

जो गज के स्मरण करने पर गरुड़ पर आरुढ़ होकर दौड़ पड़े, जिन्होंने दीनों एवं देवताओं को सुखद मन्त्र दिया तथा पाण्डवों की इच्छा-पूर्ति की, वही कृष्ण उदयपुर आए, यह यहाँ के निवासियों के लिए अच्छा हुआ।

हे गरुड़गामी ! महत्सनामधारी !! आपका यहाँ पधारना धन्य है ! आपके यहाँ आने से यहाँ की प्रजा ने ईश्वर का स्मरण कर मानो गंगा—स्नान किया हो। महाराणा के हित के लिए आपके यहाँ आने से यह नगर पवित्र होगया।

अब आपकी कृपा से महाराणा भीमसिंह के सामन्त क्षोभ रहित हो जाएँगे। यदि कोई दूषित विचार वाला होगा भी, तो उसका दलन हो जायगा। राणा की आज्ञा में रहने वाला ही झुकी रहेगा। अगर कोई पे'ठ रखेगा, तो धूल में मिल जायगा।

— गीत २ :—

राजा नैह डंडै चोर नैह रांचै,

रोसे खोसै नहीं सिम।

हर रो नाम अमोलख हीरौ,

अै तूं हरटै धार यम ॥१॥

ऊँन ठादै लाय — अलीतै,

गल बल जाय न छूट गएँ।

भगवत नाम कनक आभूषण,

दिवड़ा मठी विसार हमें ॥२॥

मेरुं मेर चोर ठग मांगर,

देस बदेस न जोर डर ।

गोविंद नाम अमोलख गहणौ,

कंठधार सणगार कर ॥३॥

सखरा करवा दस्तां सांपजै,

दीधां मले न लाखां दांम ।

अजबा समर जतन कर ईको,

नीको रतन राम रौ नाम ॥४॥

अर्थः—“अजबा” कवि अपने को संबोधित करके कहता है कि हरि का नाम अमूल्य हीरा है, जिसे राजा दरह में नहीं ले सकता, चोर उठाने के लिए छिप कर भोंप नहीं सकता और शत्रु क्रुद्ध होकर छीन नहीं सकता । अतः तू उसे हृदय में धारण करले ।

गर्मी, मर्दी और अग्नि ज्वाला से भी भगवत नाम रूपी स्वर्ण भूषण गल नहीं सकता, न हाथ से छूट कर गुम ही हो सकता है । अतः हे मेरे हृदय ! तू उसे मत भूल ।

मेरुं, मेर आदि जंगली चोर जानियाँ तथा ठग और मांगने वाले उसे छिपा नहीं सकते । देश विदेश भ्रमण करने पर भी किसी का डर नहीं । ऐसा अमूल्य भूषण गोविन्द का नाम है । उसे कंठ में धारण कर अपनी शोभा बढ़ाले ।

अपने को अच्छा बमाना है, तो राम नाम रूपी रत्न दस पुरुषों के पाम ही मिल सकता है। लाखों रुपये देने पर भी यह मिल नहीं सकता। अतः तू उसे यत्न पूर्वक रख कर उसका स्मरण करता रह।

रचयिता—आसा बारहठ*

—: गीत ३ :—

मोरो मन माधवे लागौ, मदसूदने मुरारे,
 नारायणे रामे नरसिंहे, दामोदरे दातारै ॥१॥
 सतीमामा रामा हित सगे, सामी रुद्र वंशे,
 पर सीतदे रुक्मणी, बिंदे लिखामी बालंमे ॥२॥
 धरणी-धरे धरा दठ धारं, हरे पदम चक्र हाथे,
 सक रखणे सार्इये सेखे, जल-सार्इये जगनाथे ॥३॥
 लका लिय सा नवे ग्रह छोडण, नाथण थदि यह नामे,
 रामण तथा दसैं सिर छेदं, श्रीरगे श्रीरामे ॥४॥
 कैमवे कुमने कल्याणे, कंस मारणे कपाले,
 वेय ऊधारण वामणे विसने, बिट्टले वनमाले ॥५॥
 सामल त्रमे पीत सिणगारे, अहिनाथणे अपारे,
 'आसा'सामि बलाक्रम अदभुत, अंनर धर आधारै ॥६॥

* ये कवि, भक्त ईश्वरदास रोडिया बारहठ के चाचा थे। ये पहिले मातावा और बाद में सींगपूर, जयनगर के राजा के वहाँ जाकर रहे और सम्मान प्राप्त किया। इनकी बहुतसी रचनायें १७१६ के संग्रह में हैं। राज बालदेव, जोधपुर की मठियानी रानी के सती होने के सम्बन्ध में भी उन्होंने कविता (दृष्य) रचे हैं।

अर्थ:—आशा कवि कहता है कि मेरा मन उस माधव में जा लगा है, जिसे मधुसूदन, मुरारो, नारायण, नृमिह, दामोदर और दाता कहते हैं।

(जिसे) सत्यमामा और रमा का प्रेमी शिव एवं ब्रह्मा का स्वामी, सीता और रत्नियों का पति, ओवल्लभ पुकारते हैं।

(जिसे) पृथ्वी को दाढ़ों पर रखने वाला, हाथों में शंख, चक्र और पद्म धारण करने वाला, शेष एवं जलशायी. जगन्नाथ—

लंका विजयी, नवों ग्रहों को मुक्त कराने वाला, काली नाग का नायने वाला, राघव के दसों मस्तक धरने वाला, श्रीपति और श्रीराम कहते हैं।

(जिसे) केशव, कृष्ण, कन्याण स्वरूप, कमारि, कृपालु, उदारकर्ता, वामन, विष्णु, विट्ठल चनमाली कहते हैं।

(जिसे) श्याम, ब्रह्म, पीताम्बरधारि, सर्प को नथने वाले, अद्भुत बलशाली और पृथ्वी तथा आकाश का आश्रय कह कर लोग पुकारते हैं।

रचयिता—ईश्वरदास भागवट^१

—: गीत ५ :—

बढ़ पाखे वेद न कीजे, कीधो जिम रामण कीजै।

बढ़ नामी पाखे बीजे, रे लङ्कागढ़ किएही न लीजै ॥१॥

१— ये रोहिका राजा के चारव कवि परम सक्त हो चुके हैं। ये पदजे मातासु भी बाद में बीतापू में जाकर रहे। इनके रचे ग्रन्थ:—“हरिभक्त” (कोटा-

धोमंतरि धोती धोही, रवि तपिया जास रमोई,
 राय-अंगण पवण बुहारै, रै धन रामण थारै वारै ॥२॥
 जम राकस जोध जुवाणी, पूठे तस आणो पाणी,
 दरवारि विधाता दीसे, रे सोइ बैठो वैद भणीसे ॥३॥
 कुबुद्धि कांइ कुमति कमाई, रामण रीसविया रघुराई,
 लख पुत्र भत्रीजा माई, रै गह कीधे लङ्क गमाई ॥४॥

अर्थ.—कभी बड़े से विरोध नहीं करना चाहिए। अन्य विशेष प्रसिद्ध धीर कहे जाने वाले भी उसके लंका दुर्ग पर अधिकार न कर सके।

धन्य है उस रायण को, उसके समय में धन्वन्तरि उसकी धोती धोता, मूर्ख तप कर उसके यहाँ रसोई पकाता, उसके आंगन को पवन बुहारता (माह, देता)।

उसके युयक दानव योद्धा यमराज की पीठ पर उसके लिए पानी लाद कर लाते, उसकी मभा में बैठे भद्रा वेद पाठ करते थे।

ऐसे उस रायण पर दुर्बुद्धि का भूत सवार हुआ जिसने राम-चन्द्र को रुष्ट किया और लाखों की संख्या में भ्राता एवं भ्रातृपुत्र होते हुए भी उमने लंका-दुर्ग को गँवा दिया।

नका) आदि है। शक्ति विषयक—“देवीवाण” नामक पुस्तक में इनकी लिखी हुई है। फुलकर साहित्य में इनका बहुत मिलता है। “हाला भाला” की कृष्णलियों में इनकी लिखी हुई है। जो १७१९ के संमह में है। जोर इन भाग में दिये गए गीत भी उक्त संमह से ही लिये हैं।

—: गीत ५ :—

नरायण कमल-लोचन सामि-सुंदर,

पितंबर — घारी ।

थमण कुंडल मकर सोभा,

मूरती — बलिहारी ॥१॥

राउ-पंख बाहण रमणि रुकमणि,

पंकज — चक्र पाणी ।

गंभीर द्वादस मेघ गरजे,

बंद चत्र बाणी ॥२॥

कंठ माल तुलसी तिलक केसरि,

वरणधू वामी ।

लावन्य कंदूष कट्री लीला,

मालियल मांभी ॥३॥

कटि छुद्र मेखल कानि केरट,

मुख मंजल साई ।

वप-दस दु अगुल सरब व्याकर,

जाणीयाँ न जाई ॥४॥

अष्ट सिधि नव पाउ पलोटे,

भ्रम चमर ढोले ।

सिव ब्रह्म दिगपति द्वार सेवै,

ईश्वरी नो थोले ॥५॥

अर्थ:—हे नारायण ! आप कमल-लोचन सुन्दर स्वामी (श्याम सुन्दर) पीताम्बरधारी और कानों में मकराकृति कुण्डल धारण करने वाले हैं। आपकी इस मूर्ति की बलिहारी है।

हे गरुड़ गायी, रुक्मिणि-रमण एवं पद्म-चक्र धारी ! आपके समक्ष चतुर्मुख ब्रह्मा बारहों मेघों की गर्जना के समान बाणी से वेद पढ़ता रहता है।

हे प्रभो ! आपके गले में तुलसी की माला, केशर का तिलक, यामाङ्ग में, समुद्र से उत्पन्न लक्ष्मी कामदेव जैसा लावण्य, त्रिभङ्गी नृत्य करती हुई कमर और ललाट विश्वास दाता (आशा पूर्ण करने वाला) है।

हे प्रभो ! आपकी कमर में लुटघटिका और कानों में कुण्डल सुशोभित हैं। हे स्वामिन् ! आपकी यह श्रेष्ठ छवि मुलप्रद है। आपका बारह अंगुल का सूक्ष्म रूप सर्व व्यापक है, जिसे कोई नहीं जान सकता।

हे ईश्वर ! अष्ट मिथियाँ और नव निधियाँ आपके पैर दयाती, धर्मराज घमर जुलाता, शिव, ब्रह्मा और दिगपाल आपके द्वार पर सेपा करते हैं।

अतः आपका सेवक ईश्वरदाम आपकी शरण में है।

—: गीत ६ —

माधा मात तूं तात तूं प्राण दीवाण मूं,
सरब तूं सहोवर तूं सखाई।

सगो साजण सयण सामि तूं सांमला,
करम तूं कुरैब तूं कृत कमाई ॥१॥

सांच संतोष सू धरम तू सोजना,
सहज तू सील संमाधि सोहा ।

वास तू सास विसरांम तू वीठला,
मुकंद तू मनमय सत्य मोरा ॥२॥

गढ़ तू ग्रास गुर ग्यान तू गोविंदा,
गूढ गुण गोठ तू गहड़ गामी ।

नाद तू वेद तू मेद तू नारयण,
नेह तू निधि तू सहस—नामी ॥३॥

राग तू रंग तू रली तू रामचंद्र,
राज तू रिद्धि रघुवंस राया ।

मंत्र तू तत्र तू मित्र तू माँहरै,
मन तू मोह तू परम माया ॥४॥

दीन भगतांबछल दुसठ दाणव दलण,
खता लागे नहीं पितां खाले ।

आवियो हमै उबारि तै उबरै,
ईसरो जुगां जुगि तूक ओळै ॥५॥

अर्थ:—हे माधव, हे श्याम ! मेरे लिए माता, पिता, प्राणदाता, सर्पस्य, भाई, सखा, सम्बन्धी, सज्जन, मित्र, स्वामी, कर्म, कुटुम्बी और
/ इपार्जन कर देने वाला एक मात्र नृही है ।

हे विठ्ठल—सुबुन्द ! मेरे लिए सत्य, मंतोष, धर्म, सील, सुगम-
समाधि, स्थान, श्वास, आश्रय, काम स्वरूप और अर्थ (धन) रूप में
एक नृही है ।

हे गरुड़गामी गोविन्द ! हे नारायण ! मेरे लिए गढ़, जागीर,
गुरु ज्ञान, विशेष गुण, गोष्ठी, जादू, वेद, भेद, नेह और हे सहस्र-
नाम वाले ! तू ही निधि है ।

हे रघुकुल शिरोमणि राम ! मेरे लिए राग, रंग, प्रसन्नता,
राज्य, रिद्धि, मंत्र, तंत्र मन मोह और महान संपत्ति एक मात्र तू ही है ।

हे हीन एवं भक्तों के प्यारे ! तुम परम पिता की गोद में आ-
जाने के बाद अपराध लागू नहीं होते । अतः मैं ईश्वरदास आपकी
शरण में आया हूँ । तेरे बचाने पर ही बच सकता हूँ, क्योंकि अनन्त
युगों तक तू ही रक्षक रहा है ।

.....

गीत ७ :-

जाणिरें हरि अन्तर जामी,

राम मण्ये रघुनंदन राजा ।

वानर सेनक आलि करावे,

पाथरे जल बाँधी बाजा ॥१॥

मांहव जाणि वंत्ताणि मयापति,

सार ससार पनौ स सारे

तू न विसारि मना मुख आत्म,

तारि मया पश दुत्तर तारे ॥२॥

बाल्य वेद स भेद सही विधि,

वेद स भेद सवे मुख वायक ।

कंटक जेणि बहे मधुकंटक,

नाम प्रणाम नमो मुरनायक ॥३॥

ए अविलंब विलंबण ईमर,

राधये राम तणे गुणि गीजो ।

बध मुबध अछे रलि बंधण,

रध मुबध नहीं कोइ बीजो ॥४॥

अर्थः—रघुकुल नरेरा रामचन्द्र को मैंने तभी से अन्तर्यामी हरि मान लिया, जब मुला कि उन्होंने घानर सेना एकत्रित की है और जल पर सेतु की रचना कराई (पानी पर पत्थर तैराए) ।

हे आत्मा ! कृपालु माधव को पहिचान ले और संसार में तत्त्व स्वरूप मान कर उसका प्रशंसा-गान करता रह । तू उसे मन से न भूल तथा उसके नाम को जिहा से दूर मत कर, क्योंकि वही तारने वाला है । उसने घटुत से पत्तियों का उद्धार किया है ।

वेदादि में मगुण-निगुण आदि का उल्लेख हुआ है, उसे छोड़ कर देशों का मुख्य भेद ईश्वर ही मानले और कंटक स्वरूपी मधुकैटभ दानव के नाशक ही सब देवों के स्वामी हैं । उमी का ही स्मरण किया कर ।

ईश्वरदास कहता है कि तत्काल सहारा देने वाला भगवान रामचन्द्र ही है । उसके गुणों पर प्रसन्न होना चाहिये, जो बलि को

बन्धन में लेने वाला और सेतु की रचना करने वाला है। उस दीन बन्धु के समान अन्य कौन हो सकता है ?

—: गीत ८ :—

श्रीरंग साँवलो श्री मानसरोवर,
भाव तणे जल भरियो ।
मोरो हंस रमे तिण मांही,
पाप संग परहरियो ॥१॥

गई त्रिखां त्रिसना मल गलिया,
नरक ताप मो नांही ।
लहरां लिये परम रस लेणो,
मुकन सरोवर मांही ॥२॥

जे मांही सुक जेदा जोगी,
रमे रयण दिन राता ।
परम निधान सरीर पखाळे,
गोरख जिंसा गिनावा ॥३॥

अन पस्विया मखे ता ओ जल,
देखता हीं दोरो ।
सुभत वचन अवण साम्हलतां,
सदगत हंसा सोरो ॥४॥

लाछ-ब्रतार लील लहरी गव,

ताप पाप मो टालो ।

ईसर तयो गमे ते आनम,

अन्न ज्ञान विचालो ॥५॥

अर्थ:—हे श्रीपति मोंवरे ! आप मान सरोवर तुन्व हूं, भाव रूपी जल से आप परिपूर्ण हैं । मेरा हंस रूपी प्राण पत्थर पाप कर्म छोड़ कर आप में रमण करता रहता है ।

हे सरोवर रूपी मुकुन्द ! आपकी लहरों में जलपान करने से अब कृप्या मिट गई है, मल का भी नाश हो गया है और नर्क की गर्मी दूर हो गई है ।

हे सरोवर रूपी प्रभो ! आप में शुकदेव जैसे योगी रात दिन रमते हैं और गोरग्वनाथ जैसे परम ज्ञानी महात्मा अपने शरीर का प्रक्षालन करते हैं ।

हे प्रभो ! पक्षीनों को मार देने वालों के लिए आप में भरा हुआ भाव रूपी जल दुःखद है और आपके महस्व को जो केवल मात्र से जान गया है, उसे यह सद्गति देने वाला और सुखप्रद है ।

‘ईसरदान’ कवि कहता है कि हे तरंगिन सरोवर तुन्व लक्ष्मीपति ! आप ऐसा करें, जिससे मेरी आत्मा आप में रमण करने लग जाय और पाप के ताप से झुटकारा पा सके ।

रचयिता ओपा आडो

—: गीत ६ :—

हुनो तीर दरियाव रे पानसे हातरी,

हर बना ऊबारे कवण हाथी ।

सुख तणा संगती और साराई सको,

सांवल्लो अमृजण तणो साथी ॥१॥

असुर संहार प्रह्लाद ऊबरियो,

पति ना मयन-तनम तेण परचे ।

हरणकुस वरचियां थको पचतो हुयो,

वचन मोपे धखी नोज बरचे ॥२॥

संदूका द्रोपदी तणा हेला सुणे,

आप आये जसी भाँत आयो ।

पति नेडा हुँता दुखल ना पालियो,

धखी अलगो हुँतो तके धायो ॥३॥

मानकी सुधारे अने पामे भगत,

दर्द सु सवारथ सधे दोई ।

ओपला जीतया तणो ओसर थबर,

कानवा जसो नैह सगो कोई ॥४॥

१. ये कवि मिरोही प्रान्त के पेशवा के बख्तवारजी के पुत्र थे । ये चारणों को आदा शाखा के थे । इनकी रचना फुट कर साहित्य, ईश्वर सम्बन्धी व धर्मदेशिक तथा नीति सम्बन्धी विशेष मिलती है । इस कवि का १००० के अन्तर्गत होना पाया जाता है ।

अर्थ:—जहाँ हाथी समुद्र के मध्य में प्रसा जा रहा था, वह स्थान तट से पाँच सौ हाथ की दूरी पर था, उस समय उस हाथी की रक्षा कौन कर सकता था ? सब मुख के साथी हैं, केवल एक मात्र हरि ही दुःख का साथी है ।

हिरण्य नाम जो विष्णु जगदीश्वर हैं, उनका क्या परिचय दें ? उन्होंने हिरण्यकशिपु का मंहार कर प्रह्लाद को बचा लिया । शत्रु के ललकारने पर उसे भक्षण कर गए । अतः आशा है कि मेरी पुकार वृथा न जायगी (मुझ से छल नहीं करेंगे) ।

मैं ईश्वर की प्रशंसा कहाँ तक करूँ, दुःखिनी त्रौपदी की पुकार सुन कर उन्हें शीघ्र आना चाहिए था । इसीलिए शीघ्र पहुँचे । त्रौपदी के पति समीप होते हुए भी उसके दुःख का कारण बने और जगन्मति दूर होते हुए भी शीघ्र आ उपस्थित हुए ।

"अत्रौपा" कवि अपने को सम्बोधित कर कहता है कि कृष्ण के समान कौन सम्बन्धी (प्रेमी) हो सकता है ? वह देव मनुष्य जन्म को सकल घना मोक्ष पद देता तथा उसी की कृपा से स्वार्थ एवं परमार्थ दोनों का साधन हो पाता है । अतः जन्म सार्थक करने के लिए आगे कोई अग्रसर नहीं मिलने का है (इसलिए तू अभी से सँभल जा) ।

—: गीत १० :—

दलड़ा समझ रे सग्रलो जग दागरे,

पछे घगो पछनामी ।

पूगप जनम थू कद पामेला,

गुग कद हर रा गासी ॥१॥

रूचयिता—कान्हा बारहठ^१

—गीत १३ :—

सुर कोढ़ि अवर तेनीसइ सरवर,

बलि जिलरे छत्रीसइ वंश ।

हरी नाँउ मानसरीवर हंता,

हुए म दूरि अम्हीया हंस ॥१॥

पांगी हीण अवर सरे परहरि,

परहरि अनि सुर नर भूपाल ।

धीरंग तणी नाम पायासर,

मेन्है मत मन मूक मुयाल ॥२॥

आपणै भलै तया ऐ आरिस,

अनि सर सुर न कीजै यास ।

हरि मानसरि बसे सुवाइ हंस,

बसियै जेणि टले प्रमवास ॥३॥

कान्हियो कहे अवर चीतिसी कोइ,

धोखाँ करि सिरहि सिर धूणि ।

प्राण परमहंस पुणवि प्रमेसुर,

चुगि हरि सुजस रसायण चूणि ॥४॥

१. यह कवि बारहठ शाखा के चारणों में हुए है। इनके स्थान के विषय में कोई बल्लभ नदी मिलता। यह कवि भी १० वीं शताब्दि के अन्तरगत होने चाहिये, क्योंकि इनके गीत १०१६ के संग्रह में से लिख गए हैं। यह संग्रह माहिश संस्थान में है।

अर्थ:—सैतीम करोड़ देवता साधारण तालावों तथा छत्तीस ही शाखा के क्षत्रिय तलाइयों के तुल्य हैं। अतः हे आत्मा रूपी हंस ! तू मानसरोवर रूपी हरि नाम से दूर मत रहना ।

हे मेरे मन-भराल ! जल रहित तालावों के समान अन्य देवता, नर और नृपालों को छोड़कर पायासर रूपी लक्ष्मीपति को तू मत भुलाना ।

हे आत्मा रूपी हंस ! अपनी भलाई चाहता हो तो, तालावों रूपी दूसरे देवताओं की आशा न कर मरने पर भी मानसरोवर रूपी हरि की शरण ग्रहण कर, जिसमें नू पुनः जन्म न लेवे (आवागमन से बच जाय) ।

फान्द कवि (अपने को ही) कहता है कि यदि तू धोके में आकर अन्य का चिन्तन करेगा तो अन्त में मस्तक धुनेगा । अतः हे मेरे प्राण पर्येक हंस ! तू तो ईश्वर के ममक मस्तक मुका कर हरियश रूपी रमायन (मुक्ता) चुन २. कर खाना रह ।

—: गीत १४ :—

जिणि मानव जनम किया कगिया जम,

जीहां दीन्ही करण जम ।

पुगी यत्तजोड़ परम जम परहरि,

पुणे स मुजस ताड़ बडा पस ॥ १ ॥

जिणि सिरजिया जीह दीन्ही जिणि,

बलि कीय जिणि गुण कदावण वणि ।

जगदातार मेन्दि जग जीवणि,

जस अनि अपैस पम जमि ॥ २ ॥

देहां मानव जनमज देयण,

दाना सोजि बढौ दत रैज ।

गोविंद गुणा बिखा गुण गाए,

सगुणाइ निगुण गिणैवा संज ॥ ३ ॥

बिना अनंत अनंत जस बदिरै,

त्रिहुंअणि अवण गिणै चीताइ ।

कैसव जस ताहरो करावे,

कान्हियौ रखे पस कहाइ ॥ ४ ॥

अर्थ: - जिस परमेश्वर ने मनुष्य जन्म और जिह्वा उसका यशोगान करने की दी है, उसके समस्त करबद्ध हो, उसका यशोगान न कर अन्य का यश गान करने वाला तो महान् पशु तुल्य है ।

संसार के भरण-पोषण करने वाले जिस प्रभु ने सृजन कर जिह्वा दी और गुणजन (कवि) वंश में जन्म दिया, इतने पर भी जो उसे भूल कर सांसारिक जीवों का यश गान करता है, वह तो संसार में पशु समान है ।

मानव शरीर में जन्म देने वाला गोविन्द मय से बड़ा दानी है, उसका गुण गान न करने वाला पुरुष गुणवान होते हुए भी मूर्ख है ।

जिस प्रकार दुमरे मनुष्य, अनन्त दुमुको छोड़ अन्य बहुत सों का यश गान करते हुए तीनों अवस्था (बचपन, युवावस्था तथा बुढ़ापा) बिताते हैं, उस प्रकार हे कैराव ! ऐसा न हो कि मैं आपका भक्त, पशु कहा जाऊँ । मुझ में तो एक मात्र अपना ही यशगान कराते रहना ।

—: गीत १५ :—

मन घुअटा मूक्त बिलाई माया,
मिलियां दाढां विचै मन ।
करां पुकार लीजतौ केशव,
किणि परि ऊवारिसि कृसन ॥ १ ॥

मन पर बतौ गहाणो भोगे,
मंजारी गिह तणै मुखि ।
विलम्ब म करि गज ग्राह विछोड़ण,
दौड़ीजैज तणे दुखि ॥ २ ॥

माया मिनी सुवै लीजे मन,
बाहर कीजै लिखमीवींद ।
मुखि ग्रहयां न छुडावे मृना,
गिलियो किम छडविसि गोवींद ॥ ३ ॥

कान्हियां कहे मोखि करुणाकर,
विलंब करिसी तौ बात बरां ।
माया काल मंजारी मुहँडे,
करदीवतौ पुकार करां ॥ ४ ॥

अर्थ:—हे कृष्ण ! मूआ रूपी मेरा मन विल्ली रूपी माया के मुख की दाढ़ों में जा पड़ा है । अतः आप से पुकार करता हूँ, आपसे अनिरक्त अन्य कौन बचा सकता है ?

हे ग्राह से गज को मुक्त कराने वाले ! अन्य के घुलाने पर घोलने वाला (मूआ रूपी) मेरा मन विल्ली रूपी माया ने गृह-धन्ये

के मुख में पकड़ लिया है । अतः कष्ट के समय आप विलम्ब न करें और दौड़ कर सहायता करने में विलम्ब करेंगे तो मुझे दुःख होगा ।

हे लक्ष्मी पति गोविन्द ! बिल्ली रूपी माया ने सूए रूपी मन को पकड़ लिया है । अतः आप सहायता करिए, नहीं तो यह निगल जायगी, फिर कैसे छुड़ा सकोगे ?

हे करुणाकर ! कान्ह कवि को मुक्त करदे । देर करने पर यात विगड़ जायगी; क्योंकि काल स्वरूप बिल्ली माया रूपी मुख से चबाने ही वाली है, यह आप से पुकार करता हूँ ।

— गीत १६ —

मो ऊपरि पुरौ म मानसी माहय,

तै औ त्रिद ग्रहियो सतखि ।

अपराधी अगि ऊधरिया,

गुणियां तिण आयो सरणि ॥१॥

कदरज अजामेल रे काने,

खेलण मूक बिलागी खाति ।

सरण आवियां पछे प्रमेश्वर,

पापियां तणी कसी दोइ पांति ॥२॥

पावन पतित तखो पुरुषोत्तम,

किम औरवियो बिरद कहाइ ।

अपराधी मोह अधिकेरो,

कोइज हुवे तो धीज कहाइ ॥३॥

आगै घग्गा पतिन ऊवधरते,

हेक विरद वमि कीयौ हरि ।

बीजोइ बले चढै बहनामी,

कान्हिया पावन लियौ करि ॥४॥

अर्थ:—हे माधव ! मेरे कहने पर पुरा मत मानना, क्योंकि "अपराधियों के उद्धारकर्ता" आपके विरुद्ध है, उमा के अनुसार आपने पहले कितनों का ही उद्धार किया है । यह सुन कर मैं भी शरणा में आया हूँ ।

हे परमेश्वर ! आपने अजामिल से पापी का उद्धार कर सम्मान किया । आपके इस विरुद्ध को सुन कर मेरा मन भी निर्भय हो सांसारिक खेल खेलने लगा; परन्तु अब आपके चरणों की शरणा में आगया हूँ; क्योंकि पतिनों का उद्धार करने में आपके सामने कोई भेद-भाव नहीं देखा गया है ।

हे पुरुषोत्तम ! आप पतिन-पावन हैं, यह विरुद्ध अन्य पर नहीं करता । मुझ से कोई विशेष अपराधी आपको नहीं मिला होगा । मिला हो तो आप विश्राम दिलाइए ।

हे हरि ! आपने पहले कितने ही पतिनों का उद्धार किया । आप के 'पतिन-उद्धारक' विरुद्ध ने मुझे मोहित कर लिया । हे विविधनामधारी ! मुझ कान्ह पति को पावन कर आपने अपने पुरातन विरुद्ध में विशेषता ला दी ।

—: गीत १७ :—

चइती पग भरे परबने चींटी,

चितवौ तैरौ संचल विचार ।

काँइ सांभलो नहीं करुणाकर,

प्रगड़े सादे करां पुकार ॥१॥

किम सांभलो तणा माकोड़ी,

पग धरती बाजे खड़ पांन ।

मोसों किसी कू नजरि माहव,

करुणा करौ न मांडो कान ॥२॥

कीड़ी तणा सांभलो काने,

पग रा द्रमका अपरमपार ।

हरि दुख हरण अम्हारा हेला,

केम स विलैगमो करता ॥३॥

कान्हियो सबद जळंतौ कादैं,

तन प्राजळे त्रिविधि गुण बाप ।

काने सरवां सदा कहीतो,

बहरो रखे कहाड़ बाप ॥४॥

अध.—हे करुणाकर ! पर्वत पर चलनी हुई चीटी के पैरों की आवाज आप ध्यान पूर्वक सुनते हैं, तब क्या कारण है, कि उच्च स्वर से मैं पुकारता हूँ और आप नहीं सुनते ।

हे माधव ! चीटी के चलने पर घाम व पत्ते बजते हैं, उसे तो आप सुन लेते हैं; परन्तु मुझ पर आपकी कुटिलि क्यों है ? (क्या कारण है) आप करुणाकर होकर मेरी पुकार पर कान भी नहीं लगाते ।

हे दुःख हर्ता हरि ! आप चीटी की पग-ध्वनि तो सुन लेते हैं, और क्या कारण है, कि मेरे उच्च स्वर से पुकारने पर भी विलम्ब करते हो (अथवा कहीं रुक गये हो ।)

मैं बान्ह करिय ये शब्द जलता 'हुदता' हुआ कह रहा हूँ: क्योंकि मेरा तन त्रिनाप से जल रहा है। आप में सब कुछ सुनने की शक्ति विशेष बढाई गई है, तथापि परमपिता कहलाए जाने वाले आप इस समय बधिर कैसे बन गए हैं?

—: गीत १८ :—

पौकार मढाउत करे प्राणियों,
साहिब दियो सहाइन साथि।

मन गुर शब्द आकुस न मानै,
हसती मदीमत नाबे हायि ॥१॥

पीलवान परि जीउ पुकारै,
नागय्य दग्गारि निन।

समग्य तणी न बामे सांकल,
चंचलाई मद बहे चित ॥२॥

राजि दुशारि पुकारै राखव,
बाद हैस हरतो महावत।

काया नगारि दस्तल अति कीधो,
मन छूटो हसती मसत ॥३॥

कान्हियो कहे पुकार करंतां,
गोविंद किम हूइजे गहन।

मादववते न बामे माहव,
मद बहतो हायियो मन ॥४॥

अर्थ.—हे स्वामी ! महावत रूपी प्राणात्मा आप से पुकार करता है कि आप सहायक रूप में साथ दीजिए, क्योंकि मस्त हाथी रूपी मन, ललकार और अंकुश को लोप कर बश में नहीं होता ।

हे नारायण ! आपके दरबार में महावत रूपी जीवात्मा सदा पुकार करता रहता है कि मदोन्मत्त चंचल हाथी रूपी चित्त, स्मरण रूपी गृहला से बांधा नहीं जाता और मनमाना विचरण करता है ।

हे राघव ! आपके राजद्वार पर महावत रूपी आत्मा पुकार करता है कि मस्त हाथी रूपी मन, बन्धन मुक्त होकर काया नगरी में मन मानो उन्माद मचा रहा है ।

हे गोविन्द ! कान्हू कवि आपसे पुकार करता है, आप चुप क्यों हैं ? हे माधव ! इस महावत रूपी आत्मा के बन्धन में, यह मद चुपाता हुआ हाथी रूपी मन नहीं आता ।

—, गीत १६ :—

दियण लंक गढ विभीषण कनक ग्रिह सुदामा,

दान अनि किता जाँ मुगति दातार ।

घटी जेती तिता खून मूँ मझि घणा,

किया में तके तूँ बकसि करतार ॥१॥

तारिया अजामिल सारिखा पतित तैं,

तिणि कियै करां पाँकार तुनां ।

पहर हेकणि असट खून विचि प्राणियो,

में ज. बांधी छंडवि तूहीज मूना ॥२॥

‘आप आधक तिसी खम्पा कीजँ अनंत,

हुट मन तएयै म बिचारि मोर्यै ।

बगमिहो बगमिहो बगसि बलिबंधण,

चत्र पहर तएयै बर्बास चोर्यै ॥३॥

कान्हियाँ तुफसौं काम कीधे कपट,

आदि जायँ बळे तुहिज आगँ ।

अनंत करि स्तन बलि इतो मांगा अनंत,

मरां लेखो रखे तार मांगे ॥४॥

अर्थ:—हे स्रष्टा ! आपने विभीषण को लंका और सुदामा को स्वर्णिम-गृह दिया । ऐसे दान में कोई विरोधता नहीं, आप तो मोक्षदाता हैं । मैंने पक्षी २ में पट्टन से अपराध किए हैं, वे सब आप क्षमा कर दीजिए ।

हे प्रभो ! आपने अज्ञानित जैमे पतित का उद्धार किया । अतः आप से मैं विनती करता हूँ कि मुक्त प्राणी ने एक प्रहर में आठ २ अपराध किए हैं, फिर भी (आशा है कि) आप ही मुझे बंधन मुक्त करेंगे ।

हे बलि को ग्रन्थन में लेने वाले अनन्त प्रभो ! आप मेरे मूर्ख मन की ओर न देखें, आप आदि से क्षमा करते आए हैं, उसी प्रकार (मुझे भी) क्षमा करें । मैंने चार २ प्रहर में बर्बास अपराध किए हैं; परन्तु आप अवश्य क्षमा करेंगे ।

हे ईश्वर ! कान्हू कवि ने कर्म बन्धन में पड़ कर आप से कपट किया और आप से ही क्षमा याचना करता है । मैंने तो अनेक अपराध

किए हैं; किन्तु मरने पर आप उस बात को भुला दीजिए और मुझे मरने दीजिए।

—: गीत २० :—

हलरे मन रूढ़ तरुणपण हूँतै,
जोइ जगदीश न भजियौ जाणि ।
न्याइ हँ नीर भरते नयणे,
नर ताइ मिर धूणै निरवाणि ॥१॥

जोअण सु तण तणी सुख जांये,
जे जाणियौ नहीं जगदीश ।
पांणी चखे यहंते ग्रधपणि,
सुज पांतरिया धूणै सीस ॥२॥

धातर बणा तरुण पण वाला,
बोलत्रिया हरि भगति विणि ।
दुस तिखि नयण भरै डोकरपणि,
उतमंग धूजे दुख उवणि ॥३॥

कापा पहड़ती पहिलो आन्हा,
काइरं जस न कहै कृमन ।
नीर विधार आँखियां नाखिसि,
मायो धूणिसी पछे मन ॥४॥

अर्थ:—हे मूर्ख मन ! तू तारुण्य के विनोद से दूर रह, यदि तू जगदीश्वर को जान कर के भी उसका जप नहीं करेगा, तो अन्त में

मोक्ष के लिए (ऐसा नहीं करने वाले मनुष्य के समान) आँसू बहायगा और मस्तक धुनेगा ।

सुन्दर शरीर में नू यौवन को मुख रूप मानता है (अथवा पुत्र मुख मानता है) परन्तु याद रख, यदि नूने ईश्वर को नहीं पहचाना, तो बुढ़ापे में आँसू बहायगा और उसे मुलाने पर मस्तक धुनता रहेगा ।

हरि की भक्ति के बिना यौवन के बहुत से दिन गँथा देने पर बुढ़ापे में नेत्र भरते रहेंगे और उसी दुःख से मस्तक डगमगाता रहेगा ।

फान्ठ कवि कहता है कि हे मन ! शरीर छोड़ने से पहले कृष्ण का पुद्ग भी तो यशोगान कर, नहीं तो आँसू से तीन - धारा आँसू बहायगा और पछता कर मस्तक धुनेगा ।

—: गीत २१ :—

कैलास न कामलि दीर न कंचन,

नीर न भोजन संभ न नाद ।

परम निधान अमी जस परहरि,

सिगळे बिल सारिता सदाद ॥१॥

पर्वग प्रीया रम बसत्र न परिमल,

लहि जल अने न तलप लग ।

माथे जीह गुभा जग मादन,

मदर जिमा माखिबौ जग ॥२॥

अति द्रव बसत्र न परिमल आदन,

मदल सानपण मुन्दगि मूष ।

राम तणौ गुण अमो रसायण,

दूजो आक तणौ सढ दूध ॥३॥

अमर अमृत जण हुवा अगै है,

विसन अमृत सोईज ग्रहि वाणि ।

कया सवादज करै कान्हिया,

जितुं बैसरिस छमासी जाणि ॥४॥

अर्थ:—प्रभु के अमृत तुल्य यश को छोड़ देने पर घोड़े, स्त्री, हीरे, सोना, अन्न-जल, शय्या और राग रंग ये सब विष तुल्य हैं ।

माधव का यशोगान ही अमृत तुल्य है । घोड़े, स्त्री-प्रेम, वस्त्र, सुगन्धित पदार्थ, अन्न-जल और पर्यंक आदि सांसारिक सुख-सामग्री हलाइल के समान है ।

एक मात्र राम का गुण-गान ही अमृतमय रसायन है । शेष-तलवार, द्रव्य, वस्त्र सुगन्धित पदार्थ, लगान लेना, सातखंडे मडल और मुग्धा सुन्दरी आदि आक के दूध के समान हैं ।

विष्णु का नाम ही अमृत है, जिसे जप कर पहले कई अमर हो चुके हैं । उसी का धाणी द्वारा जप करता रह । कवि अपने आप को संबोधित करता है कि हे कान्हा ! अन्यत्र कहीं भी स्वाद नहीं । प्रभु-स्मरण बिना तू एक दिन को भी छः महीने के समान बड़ी कठिनाई से बीतने वाला समझते ।

—: गीत २२:—

राम साठ पछेड़ी भागी ढांढी,

जीमण अधपा चुन जिम ।

जां मिलि हगि भुलैछै जीउड़ा,

अनमन ले काहिस्ये इम ॥१॥

बसत्र पांच गज फूटो वानस,

कहिस्ये मुसटी नून करे ।

प्रीत किसी नामो रे प्राणिया,

पदि घरणै काहिस्ये परो ॥२॥

फूटो बसत्र तोलदी फूटो,

आटो मुठी सख अछे ।

जोनि लगे सगपस मनि जाणे,

छोनि कियो काहिस्ये पहे ॥३॥

रे मगवंत बिछा कृष पारो,

आतमग्यान विचार इसी ।

धाति अगनि मांदि मारे धोके,

कान्हिया तारु नंद किमौ ॥४॥

अर्थ:—हे जीव ! अंत में मान हाथ की पट्टेदी (कस्तूर) आंदा, फूटी हँडिया हाथ में लेकर, आगे हो, बिह के लिए आध पाय नून निघाल, तुम्हे सुदां मान धून के विचार में भूत्वे रह तेरे कुटुम्बी तुम्हे घर में बाहर कर देंगे ।

हे प्राणी ! उनसे क्या प्रीति जो अन्त में पाँच गज वस्त्र में दौड़-कर, फूटा बर्तन आगे ले, बिहके लिए एक मुट्ठी नून (आटा) खर्च कर तुम्हे घर में निकाल देने वाले हैं ।

खाइसि तौ जाइसि विण सूटी,

रोगीयां ग्रस विषय रस ॥२॥

प्राणीया पीयै लियै मत परसे,

देखि सुरा पल परा दछि ।

काढो कसन नाम छाँडै काँइ,

कहतां जो जाइमि कुपछि ॥३॥

तन जोग विहरि वशौ कीर्तनि,

कान्हिया तो रदिस्यै कुसलि ।

रखे लियै संसार तथौ रम,

रसियौ जाइसि रसावलि ॥४॥

अर्थः—सयमी होकर सदा राम-रस पीने को तय्यार रहना चाहिए । इसी से आत्मा का बखार हो सकता है । यदि मदिरा, मांस और पर स्त्री का उपभोग किया, तो अन्त में रोग ग्रस्त होकर मरेगा ।

यदि कोई पीना चाहे तो औषधिरूपी कृष्ण-यश-गान का पान करे । इसके विपरीत कोई सांसारिक रोगों में ग्रस्त हो विषय-रस का पान करेगा तो उससे तृप्त भी न होगा और अन्त में संसार से जाना पड़ेगा ।

हे प्राणी ! न तो मदिरा पी और न मांस (सेवन कर) तथा चतुः भी हो तो भी पर स्त्री का स्पर्श न कर । मुख से कृष्ण नाम कह, उसका त्याग न कर । (कृष्ण नाम) कहते ही विषय रूपी कुपथ्य के कारण उत्पन्न हुए समस्त सांसारिक रोग मिट जायेंगे ।

कवि अपने को सम्बोधित कर कहता हैः—हे कान्हा कवि ! शरीर को योग में रमा दे और कीर्तन तथा जप करने वाला बन,

वसी में कुराल है । यदि सांसारिक रसों का स्वाद लेकर रसिक कह-
लाया तो रसातल में चला जायगा ।

—: गीत २५ :—

आजोकी रांम इसै क्यौ आरंभि,

मछर घणे प्राजळै मुख ।

पाणी सिरे तरावे पाथर,

रामण बौदण तणी रुख ॥१॥

राजा राम ऊपरी राणे,

आज मछर दाखे अनिमंघ ।

बांधी पात्र तेम कांइ बांधे,

काइ बौदे छेदे दसकंध ॥२॥

भृकुटस उज्जल दसरथ संभव,

भुजीया दीसै भूजुचल ।

जल सिरि तिम चलीया दल जाए,

दसमिर गमिजै सहित दल ॥३॥

बाहर सीत तणी सीतावर,

बणिपा दीसे लील विलास ।

पहिला जिम चुणिजै जलि पाथर,

पछे चुणीस्यै सीत पलास ॥४॥

पदिवा रामण सीत बालिवार,

उपरि समद्र कियो इलगार ।

कान्हाय्या कहँ बनवि सकियँ किम,

वर्णित अनूप अनन्त तिथिवार ॥५॥

अर्थ:—हे रामचन्द्र ! आप इस प्रकार क्यों चढ़ाई कर रहे हैं ? आप में आज मस्ती (चमंग) और मुख पर विशेष तेज छाया हुआ है । ज्ञात होता है, आप जल-निधि पर तो पर्यटन तैरायेंगे और राखण को डुबो देंगे ।

हे राजा रामचन्द्र ! रावण का नाश करने के लिए आज बड़े उन्मत्त हो गए हैं । जिस प्रकार आपने (समुद्र पर) सेतु का निर्माण किया, उसी प्रकार आप दशकंधर (रावण) के मस्तक काट कर उन्हें (समुद्र) में डूबो कर एक दूसरा सेतु रच देंगे ।

यम चमाते हुए भाल घाले हे दशरथ नन्दन ! आपकी भुजाएँ सर्प के समान हैं, उनके घल पर (समुद्र के) जल पर होकर आपने अपना सेना को बढ़ाया । यह निश्चय है कि आज आप रावण को उसकी सेना समेत डुबो देंगे ।

हे सीता पति ! सीता को लियालाने को आने पर आप में रण-
 प्रीड़ा का झुल्लास ऐसा दिखाई देता है, मानों आपने जिस प्रकार सेतु
 की रचना की, उसी प्रकार इन मांजाहारी दानवों के मस्त्रकों द्वारा एक
 और सेतु की आप रचना कर देंगे ।

कान्हू कवि कहना है :—हे अनन्त प्रभो ! आपने रचण का नाश करने और सीता को ले जाने के लिए समुद्र पर पत्थरों और दानवों के शर्शों के जो ढेर लगा दिए (दो दो सेतुओं की रचना कर दी) आपके उस समय के धीर स्वरूप का वर्णन कैसे किया जाय (यह तो वर्णनातीत है) ।

—: गीत २६ :—

वरमै धण ययण धण का मसिवन,
 ग्यान हीण रंग जके ग्रहे ।
 चित जयां हेत सदित हरि चरणे,
 राता ताइ ऊजला रहै ॥१॥

जोवण सपण बूंद मिदिया जस,
 दीसै मसिवन छुल दईव ।
 रग हरि गुणा कियो त्यां रहिया,
 जग चिहुर सारीखा जीव ॥२॥

रतिराउ ज्यै न रंगि जाइ रीधा,
 करी कमप्रस वसि करि कसन ।
 कालिक कंस लगै ते कीधा,
 मन जे त्यां ऊजलां मन ॥३॥

कालि पृङ्गु तरुणपण कान्हा,
 नाउ हरि विण भीनाज नित ।
 विभ्र यण होभतै धण विसोमै,
 चिहुर सेत मसिवरन चित ॥४॥

अर्थ:—धन तुल्य यह कमदेव विशेष रूप से रयाही के समान रयाम धण वरमता है, उसमें रंगे जाने वाले शान हीन हैं; परन्तु जिनका चित प्रेम पूर्वक हरि चरणों में लीन है, राता (अनुरक्त, लाल) होत रूप भी उज्ज्वल है ।

यौवन रूपी गहरी बूँदों में भोने हुए मनुष्यों के मुख काले दिखाई देते हैं; परन्तु जो हरि के रंग में रंगा हुआ है, उसका जीवन बुढ़ापे के केशों के समान उज्ज्वल है।

रतिपति (कामदेव) के रंग में सने हुए लोगों ने कुयरा के कारण अपनी काया को काले रंग से पोत दिया। किन्तु जिन्होंने काले केश होते हुए (जवानी में) भी अपना मन हरि की ओर लगा दिया, उनका मन उज्ज्वल (पवित्र) है।

“कान्हा” कवि अपने को संयोजित कर कहता है कि यह तारुण्य जाने वाला है, यदि हरि के नाम में सदा लीन न रहा तो बुढ़ापे में केश श्वेत और मन काला होने से लोगों को तू बहुत मुरा दीखेगा।

रचयिता—कर्मसी आशिषा

—: गीत २७ :—

ईखे अंगि एह करामत ईसर

थर कोतक ब्रह्मलोक थयै।

माँडे आप रहण मैदाने,

दाने तो गढ़ लंक दिये ॥१॥

देखे रूप भुयण त्रिहुँ दानी,

प्रम ये तोरो अगम प्रताप।

आपे गज हैमर ओलगुआं,

ऊपर चढ़ै ओढिये आप ॥२॥

१ यह आशिषा शास्त्रा के कारण कवि थे। माम परछंदा और कवियों (मेवाड) के आशिषों के पूर्वज थे। त्रिनक्ष त्रिरोच उल्लेख प्राचीन राजस्थानी गीत माग ॥ के टिप्पण में दिया जा चुका है।

अहि मानव मुर ईस कहै इम,

मामी ईस तुहारा मेस ।

सौजन माल देयै सेवगुयां,

आप मजे मलमाल अलेख ॥३॥

मुर मण्डल हँरांनि हुआ माहि,

हर तू केस करामत हाक ।

अमगत सौर ग्रव ओलगुयां,

आप अहार भूतरो आक ॥४॥

एकणि रहण अहो निस ऊगां,

दाखव जीह मुजस ते देव ।

पत्र ले आप कमलि, ले परठे,

सिर छत्र घर करतां सेव ॥५॥

अर्थ:— हे शिव ! आपके चमत्कार की देख कर तीनों लोक चकित हो जाते हैं; क्योंकि आप जंगल में निवास करते हैं तथा अपने भक्त (रायण) को लंका जैसा दुर्ग (रहने के लिए) दान में दिया है ।

हे महान् दानी प्रभो (शंकर) ! आपके दान देते समय के स्वरूप और अपार प्रताप की अंशंसा त्रिभुवन करता है । आपका स्मरण करने वालों को आप हाथी-घोड़े देने रहते हैं और आप स्वयं बैल पर चढ़ते हैं ।

हे ईश ! मुर, नर, नागादि देव कर यह कहते हैं कि आपके इम स्वरूप का सब को विरहाम है । आप अपने सेवकों को स्वर्ण मालाएँ

देते रहते हैं और आप स्वयं मृतप्राणियों की मण्डमाला धारण करते हैं।

हे शंभो ! आपके चमत्कार को देख कर पृथ्वी सहित समस्त मण्डल विस्मित होता है। आप अपने इच्छुकों को अमृत तुल्य क्षीर भोजन देते हैं और स्वयं आफ धतूरे का आहार करते हैं।

हे महेश ! आप सदा एक ही वेश में रहते हैं। अतः आपका यश प्रत्येक की जिह्वा पर बसा हुआ है। आप अपने मस्तक पर केवल भक्तों द्वारा (विलय) पत्र धारण करते रहते और अपने सेयकों के मस्तक, राज-छत्र से सुशोभित कर देते हैं।

रचयिता—गुलजी आढा

—: गीत २८ :—

पूछे की घेद हकीमा पाछे, नाइ दस्ताड़े भाल नळे ।
 जाणू भाँच जीयना जासी, हुकम बना नैह पान हलै ॥१॥
 सुख दुख लाम अलाम देह सँग, आमट मटे कह बैद अगै ।
 जुग लग मान धानंतर जेहा, लगा राह जे क्यूँन लगे ॥२॥
 यो नत्र मंत्र गम मुख आखो, सिव कहिहो धारियो सुवा ।
 बरसे दरद नह रहे बाकी, दरद किये सोई किये दुवा ॥३॥

अर्थ:—हे मानव ! वैद्य-हकीमों के हाथ में हाथ देकर नाड़ी !
 दिखाना घृणा है। मैं तो यह सत्य मानता हूँ कि ईश्वर की आज्ञा के बिना
 पृष्ठ का पत्ता भी नहीं हिलता। अतः उनकी कृपा है, तब तक जीयका
 शरीर में विलोड नहीं हो सकता।

सुख-दुःख, लाभ-हानि ये सब शरीर से लगे हुए हैं, जो अमिट हैं। वे वैशों से नहीं मिट सकते। इसलिए मान्धाता जैसे ने भी जिस (हरि स्मरण के) मार्ग का आश्रय लिया, उस मार्ग पर नू विचरण क्यों नहीं करता ?

राम नाम रूपी मंत्र की महिमा शिष्यने जानी और उसने उसे अपने मन में स्थान दिया, उसी का उच्चारण करते रहना चाहिए। जिससे अंग पीड़ा बदे नहीं, अपितु दूर होजाय। जिसने रोग उत्पन्न किया, वही दया देकर ठीक कर सकता है।

रचयिता—गोपालदास

—: गीत २६ :—

आखँद घण कृसन अहो निसि ओलुगि,

आणि कदे हिदा मभि ऊणि ।

चित पंखी म करिसि काद चिता,

चांच दीध सुजि देख्यै चृणि ॥१॥

सुख दाता भूषण त्रिहुँ सामी,

ताइ भजि निसि वासुर जग तात ।

तुं मन मत कल्पै जिणि तुना,

मुख दीन्ही मख कितोहेक मान ॥२॥

जीव विचार करसो जोए,

जडहुँ चेतन कीयो जिणि ।

करिसि म सोच समथ हरि करिस्यै,

पोसथ कीध समरथ पिणि ॥३॥

प्रम जिखि कीध सोई ज किन प्रमखे,
प्राणीया उदर थकै प्रतिपाल ।

गलो जेखि दीन्हौ गोपाला,
गालो सुज देख्ये गोपाल ॥४॥

अर्थ:—हे चित्त-पखेरु ! कृष्ण का स्मरण कर, जिससे तुझे विशेष आनन्द प्राप्त होगा । तू हृदय में उदास मत हो और किसी प्रकार की चिन्ता न कर । जिसने चोंच दी वही चुगा (आहार) देगा ।

हे मन ! त्रिलोक पति सद्य सुखों का देने वाला और जगत्-पिता है । उसी का नू रात दिन जप करता रह और दुःखी मत हो । जिसने मुख दिया वही आहार भी देगा ।

हे जीव ! तू निश्चय सोचले कि हरि समर्थ है । उसी ने जड़ एवं चेतन को बनाया । तू चिन्ता मत कर, जिसने गर्भवास में पोषण कर जन्म दिया, वही उदर-पूर्ति भी करेगा ।

माता की कुक्षि में जिसने पालना की, उस प्रभु का नाम लेता रह । गोपाल कवि कहता है:—जिसने मुख दिया वही खाने को भी देगा ।

रचयिता—चतुर्भुज

—: गीत ३० :—

कीयो रूप नरसिध प्रह्लाद हित कारखे,
गयँद उद्धारखे गुरुद्वगामी ।

पडावत कीर गणिका थई पार वा,
मंठां कज सारवा नमो स्वामी ॥१॥

छांन छीपा तणी हाथ निज छवाई,
लीवाई गाय सो जगत जाणी ।

जुलावे कबीरे ध्यान धरियो जदिन,
आप बालूद मरे जिनस आंणी ॥२॥

जुध करे काज जम माल अरि मंजिया,
माहा बल मांजिया खेत माहँ ।

रिधू ब्रद छंढि भंगेव पण राखियो,
आप हार हाथ आवध उठाहँ ॥३॥

मील सवरी तथा चोर भूटा भखे,
खीचणै जाटणी तणो स्थापो ।

नरसिया तथा काज सार्या नरायण,
आप बडे सावल राह आपो ॥४॥

चीच लाखी गुटे पांडव ऊबारिया,
मारिया कौरवां तथा मांभी ।

बधारे चीर ते लाज राखी बळे,
राज दे जुधिष्ठिर हुबो राजी ॥५॥

दास मीरां जिके जहर राखे दियो,
भम्रन कर निम करलियो ओच आपो ।

लिपां पिंड रती नह ताव लागौ तदन,
भरोसं जगतपत भरम लागो ॥६॥

तारियो अञ्जामिल सजन ते तारियो,
गीध ऊधारीयो वैद गावे ।

रहावण विरद गिरवर नखां धारियो,
पार नहँ सेस माहेस पावे ॥७॥

ऊधारे प्रभू पत साप ते अहेल्या,
तवे जग सरब अमरीख तारे ।

सेन रँ हेत नाई हुबो सांवरा,
सदा भगतां तणा काज सारे ॥८॥

बारहठ चत्रभुज करे पुं वीनती,
दीनती अधारे कांन दीजे ।

सरष दुख मेट म्हारो अने साँवरा,
क्रपा कर आप रे थको कीजै ॥९॥

ऊधारे कीर काळू कुटम आप गी,
लहे कुण आप रा गुणा लेखो ।

रमापति राज रा विरद राखौ रिधू,
दसा मो दीन री ओर देखो ॥१०॥

अर्थ:—हे प्रभो ! मैं आपकी वन्दना करता हूँ । आपने प्रह्लाद क. रक्षा के लिए नृसिंहावतार धारण किया । उसी प्रकार हे गरुड़ गामी ! आपने हाथी का उद्धार किया । गणिका ने तोते को आपका नाम मात्र पढ़ाया, त्रिमसे वह भवसागर पार कर गई । इस प्रकार आप संतों के कार्य पूर्ण करते रहते हैं ।

हे स्वामी ! यह संसार प्रसिद्ध है कि आपने अपने हाथों छीपे (एक जानि का व्यक्ति) की दूत को छा दिया और गाय को बचा लिया । कबीर जुलाहे के ध्यान करने पर आप उसके यहाँ अनाज की बालद भरलाए ।

हे हरि ! आपकी कृपा से मालदेव ने युद्ध करके युद्धस्थल में पल्लवान शत्रुओं को दबा कर नष्ट कर दिया । आपने भीष्म की प्रतिष्ठा को रख कर चक्र के स्थान पर रथ का पहिया उठाकर अपनी प्रतिष्ठा को तोड़ दिया (अर्थात् भक्त की प्रतिष्ठा के लिए अपनी प्रतिष्ठा को तोड़ दिया) ।

हे नारायण ! आपने प्रेम के कारण सिवरी के झूठे बेर खाए, जाटनी का बनाया हुआ खीच (खीचड़ी) का भी आपने आहार किया और नरमी (महता) के कार्य को पूरा करने के लिए आप साँघल-शाह बन गए ।

हे जगत्पति ! महाराणा ने मीरा को जहर दिया, उसने आपके विश्वास पर पी लिया । आप उस विष के अंश को पान कर गए और मीरा के लिए आपने उसे अमृत बना दिया । जिससे उसके शरीर को विषके ताप ने स्पर्श तक नहीं किया ।

हे भगवान ! आपने अजामिल और सज्जना को पार लगा दिया, वेदों में उल्लेख है कि आप ही ने गिद्ध को मोक्ष दिया, अपने विरुद्ध को निभाने (व्रज को बचाने के लिए) नख पर गिरि को बठा लिया । आपके इन चरित्रों का शेषनाग और महेश भी पार न पासके ।

हे सौवरे प्रभो ! आपने अहिल्या को पति-श्राप से बचा लिया । संसार कहता है आपही ने अम्बरीष का उद्धार किया । सेना नाई के स्थान पर आप स्वयं नाई बने । इस प्रकार आपने सदा भक्तों के कार्य की पूर्ति की ।

हे सौविरे ! मैं बोरहठे चतुर्भुज आपसे विनयी करता हूँ । मुझे दीने समझे कर आश्रय स्वरूप हो मेरी पुकार पर ध्यान लगाइये और मेरे संयं दुःख दूर कर आप मुझे अपना सेवक बना लीजिए ।

हे लक्ष्मापति ! आपका स्मरण कर कीर (जाति विरोध) काल अपने कुटुम्ब सहित मोक्ष को प्राप्त हुआ । अतः आपके गुरुओं का कौन पार पा सकता है । आप अपने विरुद्धों का पालन करते हुए मुझ दीन की दशा पर ध्यान दीजिए ।

— * * * —

रचेयिता-चन्द्रलाल मादा

—: गीत ३१ :—

दन दन प्रत देव आराधूं दनकर,

कीजे बेल हमें ततकाल ।

मो करणी भाँके मत मालक,

भूप तथा विरद दस भाल ॥ १ ॥

अरुण-पती श्रवण तो अरजी,

पहुँचविण्य अरिदास 'पुणूं' ।

जिज मती कीजे जुग जीवन,

हमें विपत ततकाल हणूं ॥ २ ॥

देत वंस मोखण्य बरदायक,

अठ 'पहर चित ध्यान अखूं' ।

"१" यह कवि सत्यदेवदे से चोखे वांछना प्राप्त है माला शैली के चारणों में दृष्ट है ।

करणा—धर कीजे ओ कारज,

बख्त बकत फरियाद बहूँ ॥ ३ ॥

जगतपती अतमगत जाँमी,

मन चता तमरार मटाय ।

सेवग तखी अरज अब साँमल,

सुरज देव करो मम साय ॥ ४ ॥

हे दिनकर भगवान् ! मैं प्रतिदिन आपकी आराधना करता हूँ ।
अब आप मेरी तत्क्षण महायत्ना करिए । हे स्वामी आप मेरी करणी को
न दें, आप तो अपने विरुद्धों को पिचारे ।

हे अरुण के स्वामी । आपके कानों तक मैं अपनी पुकार पहुँचा
रहा हूँ, हे जग-जीवन ! आप विलम्ब मत करना, मेरी आपत्ति को अब
आप शीघ्र ही दूर कर दें ।

हे दैत्य-धरा-नाराक विरुद्धाले ! मैं आपका आठों पहर ध्यान
करता हूँ । हे किरणों के धारण कर्ता ! मैं आपत्ति के समय विनय
करता हूँ, आप मेरा यह कार्य मिट्ट कर देना ।

हे जगत्पति, अन्तर्यामी सूर्य भगवान् ! आप मेरे मन से
चिन्तारुपी अन्धेरे को मिटा देना और इस सेवक की विनय सुनकर
शीघ्र ही महायत्ना करना ।

रचयिता—जयमल बारहठ^१

—: गीत ३२ :—

लङ्का लीजसी जल सागर लोणे,

हरि लग करतो होंसा ।

भाले कूभकरण रा भाई,

तंबूआँ तथा तमासा ॥१॥

लंका घेरि चहूँ दिसि लाया,

सारंगघर समियांखा ।

ऊवारिस्वे कुणैनु ईसर,

रांछि प्रमणै राखा ॥२॥

फहै कलत्र सिव प्रांघि काचदा,

करतो केसव केरा ।

दुरमतिछाँडि असुरपति देखे,

दसरथ सुत रा डेरा ॥३॥

मक ले म कहे त्रिय संके,

लङ्कापति किछि लेखे ।

आँवर सो अडियाँ अहँकारी,

नव चौकियाँ न देखे ॥४॥

१ यह कवि बारहठ राजा के चार्यों में हुआ । इनका स्थान मलान है । इनका होना वि० सं० १६०० के अन्तर्गत पाया जाता है, ये गीत १७१६ के संग्रह में से लिए गए हैं, जो काश्मिर संस्करण में विद्यमान है ।

अर्थ:-मन्दोदरी रावण से कहती है। हे कुभकर्ण के शत्रु ! तू हरि (रामचन्द्र) का परिहास करता था कि वह ममुड को पार कर के कैसे लंका पर अधिकार करेगा उनके तबू तान दिष्ट गए हैं, उनका तमाशा देन ।

मन्दोदरी कहने लगी कि हे रावण ! चारों ओर शामियाने (तम्बू) लड़े कर लंका को घेर लिया है। यह ईश्वर (रामचन्द्र) सब दानवों में से किसे किने चाकी छोड़ेगा ?

मन्दोदरी कहने लगी "हे शिव-भक्त, दानवेश्वर" ! तू केशव (रामचन्द्र) पर ताना मारता था, अब भी दुर्बुद्धि को छोड़ दशरथ नन्दन के वितानों की ओर देन ।

हे घमण्डी, लंकापति ! मुझ स्त्री के कहने पर संकुचित मत हो । (अपने विचार बदल दे ।) तू मनु के समक्ष कुद्व नहीं । रामचन्द्र के गगनपरीं एवं तोरणावृत्ति (तम्बुओं) की ओर देन (इन से जीतना असंभव है) ।

—: गीत ३३ :—

नरे पंतरे खरे लीधे गिरं लङ्करे,

आलिवा दुयग दसरथी जापा ।

आलिवा वैर सीता सकट आलिवा,

ऊर्म-दम-हाय रघुनाथ आया ॥१॥

कडे मंदोदरी सुहोदर-क मकरन,

दोसि दस सीस खण मांदि होले ।

दीण होइ पगे पड़ि सीत पाछी दिर्या,

राख रूठो लखण दांण रोले ॥२॥

हरण अंगद जिसा मीछ हलकारिया,

अजे देखे नहीं कांइ आंधा ।

रूप होइ काल रै आवियो रामचन्द्र,

कोपियौ मांजिस्यै तूझ कांधा ॥३॥

सारि दम मीम मंघारि कूँभा सहित,

वाढि बंका भड़ाँ तेखि बेला ।

धिर करे लंक मिरि विभीषण थापते,

भला वे फाविया बोल मेला ॥४॥

अर्थ:—मन्दोदरी कहने लगी:—हे बीम हाथ वाले रावण !
चुने हुए नर-वानर वीरों को साथ लेकर लंका दुर्ग और शत्रुओं को
भस्म करने एवं बदला लेने और सीता का कष्ट दूर करने के लिए
दशरथ-पुत्र रामचन्द्र आगए हैं, (तुम सजग हो जाओ) ।

मन्दोदरी कहने लगी:—हे कुंभकर्ण के भाई, रावण ! ये तेरे
इसों मस्तक जण मात्र में लुटकते हुए दिव्वाई देंगे । अतः तुम दीनता
दिखा एवं रामचन्द्र के पैरों पड़ कर सीता को लौटा दो, नहीं तो लक्ष्मण
रुष्ट हो जायगा और झपटकर तुम्हारा नाश कर देगा ।

हे लंकेश ! हनुमान और अंगद जैसे वीरों को आगे बढ़ाया
गया है । अब भी क्यों अंधे बने हुए हो, देखते नहीं रामचन्द्र यम-
स्वरूप होकर आगया है और क्रोध होने पर तुम्हारे कन्धे फाट देगा ।

(इतना कहने पर भी, न मानने पर) रामचन्द्र ने अपने शास्त्रों द्वारा दशरुंधर (रावण) और कुम्भकर्ण को मार दिया एवं बाँके २ दानव योद्धाओं को उसी समय काट गिराया । लंका पर स्थिर रूप से विभीषण को स्थापित कर अपने दोनों वचनों विभीषण को लंकापति बनाना और रावण को नष्ट करने का पालन किया ।

—: गीत २४ :—

संग्रभलभल्ले धर चळे सेस सिर सलसले,
कपि दळे किलकिले इम कहायो ।
मेर गिर टलटल्ले माँण देंताँ मळे,
ऊठि दससीस जगदीस आयौ ॥१॥

घनख करगिहि धरे कोष पारंभ करे,
मद्यरे सररे लोपी मजाजा ।
पानरे संधरे नरे वीरंधरे,
पाथरे मायरे यधि पाजा ॥२॥

हड़हड़े वीर रथ अड़े भड़ आहुड़े,
पड़े गढ़ कपि चड़े आप प्राणा ।
सग भड़े खड़खड़े काँगुरां खड़हड़े,
रामचन्द्र आविषौ ऊठि राणा ॥३॥

पहटि परराठ सग भाट पाधोगिया,
ग्रहग गज-घाट अविघाट गाँजे ।

तैत दहवाट करि विभीषण पाट दे,

भेलियौ त्रिकुट दससीस भाँजे ॥४॥

अर्थ:—हे दशकन्धर (रावण) ! समुद्र तरंगित होगया, पृथ्वी चलायमान होगई, शेषनाग के मस्तक हिलने लग गए, वानर-सेना किल-कारी मार कर सचेत कर रही है, सुमेरु पर्वत डगमगाने लगा है और दानवों की इज्जत धूल में मिलने वाली है; क्योंकि जगत्-पति(रामचन्द्र) चढ़ कर आगए हैं। अतः तू युद्ध के लिए सावधान हो जा।

रामचन्द्र मस्ती में आगए और कुपित होकर उन्होंने मर्यादा का उल्लंघन कर दिया तथा धनुष ग्रहण कर लिया। वानर, वीरों का संहार कर रहे हैं और समुद्र मार्ग पर सेतु का निर्माण होगया है।

हे रावण ! धीरे अट्टहास कर रहे हैं, रथ आपस में टकरा रहे हैं, घोड़ा एक दूसरे से भिड़ रहे हैं, दुर्ग दह पड़ा है, प्राणों के त्यासे कपि तेरे निकट आधमके हैं, तलवारों से आग मड़ रही है, दुर्ग के कंगूर टकरा कर खड़ खड़ा रहे हैं। रामचन्द्र युद्ध के लिए आ पहुँचे हैं। अतः तू खड़ा होजा।

(इस प्रकार कपि सेना ने सावधान कर युद्ध छेड़ा) उस समय पंचवारी घण्टा मनसनाने लगे, खड्गघात से रणस्थल पट गया, भालों द्वारा गज समूह नष्ट होगया और दानव नष्ट होगए। रामचन्द्र ने लंका को ध्वस्त कर दशकन्धर रावण को मार दिया और विभीषण को लंका के राज्य सिंहासन पर बिठा दिया।

रचयिता—जामा आंढा

—: गीत ३५ :—

अखर तोल रैं उभै मत डोल रैं आंगटै,
पाप गंठ खोल रैं समझ प्रांगी।
बाजतां छोल रैं कहूँ बीसू बसा,
बोल रैं राम रामेत बाणी ॥१॥

रटी सब सेस प्रहलाद नारद रिखाँ,
धू रटी मटी जम त्रास धाखाँ।
जीवड़ा चटपटी राख रसणा त्रिका,
भाख भटपटी हर नाम भाखा ॥२॥

गज पट्टी पट्टी मनका पट्टी गोपियाँ,
भरती पट्टी गोरख समाली।
अमी रस छाक जीहाँ न क्यूँ उचारै,
वाक हर-हरी हर-हरी बाली ॥३॥

सरण असरण उभै करण सेवागराँ,
धरणधर सरीखा चरण धावै।
जोन संघट हरण वरण बिहुँवै "जसा"
गिरा नारण—तरण क्यूँ न गावै ॥४॥

१ यह वरि धाटा शाखा के चारों ओर मेशाद के धाटों के प्रायः सीमोदा व कण्ठ-
बाग धीरे खेड़ा बाजे धाटाओं के पूर्वज थे। इनके होने का समय वि० सं०
१८०० के अन्त धीरे १८०० के प्रारंभ में होना चाहिये।

अर्थ:—हे प्राणी ! तू दोनों अक्षरों का मूल्यांकन कर (वह अमूल्य है) । डगर उबार मत ला और पाप की गौंठ खोल दे । मैं तुम्हें बीस ही विद्या ढंके की चोट से सचेत करता हूँ कि तू राम नाम का उच्चारण करता रह ।

जिस नाम को शिव, शैलनाथ, ब्रह्मा, नारद, ऋषिगण और धृष्टने रटा और इसी कारण यम का भय उन्हें व्याप्त नहीं हुआ । अतः हे जीव ! लगन के साथ इसी हरिनाम को जिह्वा द्वारा शीघ्र रटता रह ।

इसी नाम का गज, गणिका, गोपियों, भर्तृहरि और गोरक्ष ने सजग होकर जाप किया । अतः अमृत की घूँट के तुल्य इस हरि-हर नाम का जिह्वा से बार २ स्मरण करता रह ।

शरण में आए हुए और नहीं आए हुए दोनों को यह अपना भेषक मानने वाला है । जिसके चरणों का ध्यान शेषावतार (लक्ष्मण) करते रहते हैं । “जसा” कवि अपने को संबोधित कर कहता है कि हिन्दू और यवन दोनों, दुःख-नाशक, तरण-क्षरण भगवान का नाम अपनी पाणी द्वारा क्यों नहीं लेते ?

रचयिता—जगाधर

—: गीत ३६ :—

माधामात विणवाल वरसाल विणि मेदनी,

जगा बैर—जोत विण भुङ्ग जेहो ।

१ यह २३ मधिया राज्या के चार्यों में हुआ था । इनका स्थान व समय अज्ञात है ।

कंठ विण गेव वैकुण्ठ विण सुर-क्रमल,
ताहरे ध्यान विण ग्यान तेहो ॥१॥

वास विण पहप अमियास विण वारता,
भुजा कालस बिणा करण माराथ ।
सास विन देह बीसास विण संगायी,
नाम विण जनम जगि जिसो जगनाथ ॥२॥

त्रिप बिना ग्रेह जोवन बिना तरुण पण,
जस बिना वार विमतार जेहो ।
निस बिना चंद चंदन बिना नाग म्खि,
तो बिना किसन संमार तेहो ॥३॥

नमो अवतार सालिक खलक नमीवण,
मूलक भांजि (हेक) पलक भांही ।
जेतियो नाम जगदीस धारो जपे,
नाम विण राम गति हुअे नांही ॥४॥

अर्थे:—हे माधव ! जिस प्रकार माता बिना बालक यर्षा के बिना पृथ्वी, सूर्य के प्रकाश के बिना ससार, अच्छे स्वर के बिना गान और नारायण के बिना वैकुण्ठ, उन्ही प्रकार आपके बिना ज्ञान गृथा है ।

हे जगदीश्वर ! जिस प्रकार सुषाम के बिना पुष्प, अभ्यास के बिना धार्ता-कथन, काल रूपी भुजाओं के बिना युद्ध, स्वाम के बिना शरीर और विश्वाम के बिना मित्र, उन्ही प्रकार आपके नाम-स्मरण के बिना जन्म गृथा है ।

हे कृष्ण ! जिस प्रकार स्त्री के बिना घर, यौवन के उभार के बिना तरुणत्व, दान के संकल्पित जल के बिना यश, चन्द्रमा के बिना रात और सर्पों के बिना चन्दन, उसी प्रकार आपके बिना संसार की दशा है ।

“जेता” कवि कहता है कि हे अलख प्रभो ! आपको नमस्कार है । संसार आपकी श्रद्धा करता है । आपके क्रोध करने पर पलमाघ में देश नष्ट होजाते हैं । अतः हे जगदीश्वर ! मैं आपका नाम जपता रहता हूँ; क्योंकि आप का स्मरण किए बिना मोक्ष प्राप्ति कठिन है ।

रचयिता—धनो

—: गीत ३७ :—

हरि हरि नित समरि ऊवरिसी हरि हूँ,

काहरे जीहां हरि न कहै ।

वाऊवा मरण सराणो बैरी,

वासै खुगे त्रोटो वहै ॥१॥

निस दिन नाम अपै नारायण,

भाले साच पढ़े म म भूठि ।

दोखी अत आतम न देखै,

पांन्ही चढाहि जरा तौ पूठि ॥२॥

१. इस कवि का कहीं पर उल्लेख नहीं मिलता । संभवतः यह प्रसिद्ध बना भक्त हो । यह रचना वि० सं० १६०० के अन्तर्गत की है श्री हरिदास भागदत्त का समयमान है ।

प्राणियां नांम समिर पुरपोतम,

अंनि विषय परहरे आल।

पगसों पग ओढ़तौ न पेखे,

क्रम क्रम जाल नाखतो काल ॥३॥

प्रिसण भरण हरि समथ पालिस्पै,

मेल्हे मा चित मूधमना ।

धरि हरि चेत समरि धरणीधर,

धरणीधरि ऊवरिसि 'धना' ॥४॥

अर्थ:— हे पागल प्राणी ! तू हरि का स्मरण कर, उसे क्यों भुलाता है ? देखता नहीं अन्तक तेरे मिहाने लड़ा है और पैर पर पैर देता हुआ पीछा कर रहा है ।

हे आत्मा ! तू नारायण का जाप कर और मत्स्य को ग्रहण कर अमत्स्य का परित्याग कर । देख, दुष्ट अन्तरु ने जरा—मयस्था को तुम पर मगार कर दिया है ।

हे प्राणी ! पुरपोतम का स्मरण कर और अन्य विषयों को धृष्टा समझ कर छोड़ दे । देखता नहीं कि काल फन्दा डालता और पग पर पग देता हुआ तेरे पीछे पड़ गया है ।

“धना” कवि अपने को संबोधित कर कहता है कि पृथ्वी के धारण कर्ता प्रभु बड़े समर्थ हैं, वे मृत्यु रूपी शत्रु से तुम्हें बचालेंगे । अतः तू शुद्ध मन से उन्हें तपना रह; क्योंकि एक मात्र रक्षा करने वाले यही हैं ।

रचयिता नन्दलाल मोतीसर^१

—: गीत ३८ :—

जबर पराक्रम पार पावे कवण जोरको,
 तोरको बडम फावे जगत तात ।
 घणो सुखदयण भेटण सँघट घोरको,
 नदा कर याद गढवोर को नाथ ॥ १ ॥

पिडारण नसट-क्रम आज धारण पिरद,
 संत फरवे भजन समट सारो ।
 भेटवो कसट प्रतपाल करवो मनां,
 धणी चत्रभुज तणो असट धारो ॥ २ ॥

जस गटे सेस माहेस मुख जण-जणो,
 कर धणी पणो अध दूर करणो ।
 घरा नवनद्र आनंद व (व) हे घणो,
 सट्ट गह सांवल्ला तणो सरणो ॥ ३ ॥

अर्थ:—“नन्द” कवि अपने को मंचोधित कर कहता है कि जिसके पराक्रम की तुलना अन्य की शक्ति से नहीं की जा सकती । जो जगत्पिता है, उसके पङ्कपन के दंग पर अन्य मुरोभित नहीं हो सकता जो महान् कष्ट को दूर कर विशेष सुख दाता है, ऐसे गढ़वोर के स्वामी (चतुर्भुज) का नूस्मरण करता रह ।

अर्थ:— बुरे कर्मों का नाश करने वाला, विरुद्धधारी, कष्टों को मिटाने वाला, संत इच्छापूर्वक जिसका भजन करते हैं और जो मन से पोषण करता रहता है, ऐसे चतुर्भुज धारी स्वामी का इष्ट रक्षण चाहिए।

शेष, महेश और प्रत्येक जिसका यशोगान करता रहता है, जो स्वामिपन का पालन कर पाप का नाश करता है एवं घर में नव निधि का दाता है, ऐसे सांवरे की तू दृढ़ शरण ग्रहण कर।

रचयिता—नृसिंहदास खड़िया

—: गीत ३६ :—

करियो अत काँप संतरे कारण,
मारण देंत बड़े मां-बाप ।
अत आतुर प्रह्लाद उबारण,
अवनी मार उतारण आप ॥ १ ॥

फाड़े खंभ फीष चहुँ फाड़ां,
द्विणमें रुधिर चलावे खाल ।
हुय नरसिंघ हिरणकुश हणियो,
बणियो रूप बडेँ विसराल ॥ २ ॥

चखां चोल रग रसण चालवते,
पाड़े अमुर चीरियो पेट ।
करतां अरज जेज नंह कीधी,
दरो दीयो राल हायल हेट ॥ ३ ॥

क्रुद्ध होकर भी एक (रावण) को निर्भय पद और दूसरे (विभीषण) को लंकादुर्ग दे दिया । इस प्रकार रामचन्द्र ने कृपा और कोप करके दोनों दानवों पर उपकार किया । ऐसा अन्य कौन कर सकता है ?

जिस नारायण (भगवान राम) ने कृपा करके (विभीषण) को लंका दी, उसे तो दूर रक्खा, परन्तु जिस (रावण) पर कोप किया उसे अपने निकट स्थान दिया । अतः रावण मोक्ष-प्राप्ति के कारण और विभीषण राज्य प्राप्ति के कारण, दोनों ही उनका अहसान मानते हैं ।

—: गीत ४१ :—

अहिणी इन्द्राणी रुद्राणी,

बलि बलि बलि विहरी ब्रह्माणी ।

बसुधा तणी बंदती बाणी,

रुकमणी माम सराहै राणी ॥ १ ॥

सत्रहणे किय कम सरगणी,

मूढ भंजे ससीपाल उमगणी ।

सुत्री बहे सहण म्हे सगणी,

बही स तूं हरी हत्य बिलगणी ॥ २ ॥

सुवर रुकमणी तणे सुहावे,

पूजा फल हमदौ जी पावे ।

भुचंगणि सत्री सावित्री भावे,

पूजण गवरी गवरि पछितावे ॥ ३ ॥

पत्नी मुहाग रुक्मणी पोसे,

भरता आर रा तखे भरोसे ।

मणिधर इन्द्र रुद्र त्रिय मोसे,

दोसीयां विधि आखिर दोसे ॥ ४ ॥

अर्थ:— नागपत्नियाँ, इन्द्राणी, रुद्राणी आकर यार २ बलैया लेती हैं । ब्रह्मा की पत्नी और संमार की सुन्दरियाँ परस्पर बातें करती हुई रुक्मणी के भाग्य की प्रशंसा करने लगीं ।

वे सब कहने लगी:— “हे रुक्मणी ! तुम्हारे पति ने अपने शत्रु कर्म का संहार कर उसे स्वर्ग में पहुँचा दिया और उत्साह में आकर शिशुपाल के भस्तक को काट दिया । तेरे हरि का तेरे माथ पाणिप्रदण हुआ है । यद्यपि स्त्री जाति में तुम हम एक हैं, फिर भी आप हम से बड़ी हैं ।”

हे रुक्मणी ! तुम्हारा पति सुन्दर और मुहावता है । पूजा करने का फल मिले तो आप जैसा ही मिलना चाहिए । नागपत्नियाँ, मर्मा मारित्री आदि के भी मन मुग्ध हो जाते हैं । अन्य स्त्रियाँ भी गौरी की पूजा करके पड़ती हैं कि हमें ऐसा घर न मिला ।

हे देवी रुक्मणी ! आप हमारे मौभाग्य की वृद्धि करनी रहें । हमारे शत्रुओं आरके पति का शरण में आए हैं । यह कहती हुई नाग पत्नियाँ इन्द्राणी, रुद्राणी विधाता को बलाढ्य देती और उनके द्वारा अपने ललाट पर निम्ने गण दूषित अक्षरों की निन्दा करने लगती हैं ।

—: गीत ४३ :—

हीरो कांड कवडी साटै हारै,

कहि समझायौ आतम केतौ ।

त्रिमौ किसो जिणि हरी बीसारे,

आउ किति जिणि कूदै नेतो ॥१॥

पड़े इन्द्र चऊ दह दिन पूरे,

पसे इन्द्र चौकड़ी बहतारि ।

ब्रह्माइ गरदौ धियो विस्रै,

हंस रे तसमात भजे हरि ॥२॥

मांडियो अंकश्रनादि भाल मधि,

प्रिय तिको बहि आयौ पासे ।

घार किति मिलती मरणावधि,

पैलाछे हत व्यौह पचासे ॥३॥

अर्थ:—हे आत्मा ! तुझे कई बार कट कर समझाया कि होरा फही कौड़ी के बदले दिया जा सकता है? अतः वह वैभव क्या कि जिसके कारण ईश्वर को भुला दिया जाय ! आयु क्षणिक है, उस पर उद्वल कूद करना पृथा है ।

इन्द्र भी (मेघों) द्वारा कुछ ही दिन जल-वृष्टि करता है । ब्रह्मा भी रात्रि की बहतार चौकड़ियों तक ही उदय रहता है । प्रथा भी अन्त में वृद्धत्व को प्राप्त हुआ । अतः हे प्राण पनेरु ! ईश्वर भजन करना ही उचित है ।

प्राचीन राजस्थानी गीत

ईश्वर ने भालम्यजी पर लिख दिया है। इसीलिए तूने गृध्री पर
आकर जन्म लिया। आयु की अग्निन अथर्व पंचाम वर्ष की है और
अन्न में मृत्यु निश्चय है।

—: गीत ४१ :—

प्रह्लाद भालि गज भालि परीक्षित,
भालि ग्वाल पंडवां भणि।
सरिखो को सामला न भूके,
धणियापगर सेवगां घणी ॥१॥

जोड़ राजा बंधिया जगसधि,
जोड़ अंबरीष द्रोपदी जोड़।
आर्य सगठ आपग उबेलग,
कृमन सरिखा घणी न कोई ॥२॥

इत्ती भीत सुग्रीव ईमवर,
इत्ति इन्द्र जादवकुल इत्ति।
अरि इत्ति अंब चाटण ओलगुवां,
थीपर तणी न को सार्गलि ॥३॥

गकम ग्राड बांरा सिमि राजा,
कृत्वा दूमासग दहकंध।
बालि यमूहन कंम विमादे,
बालि बंधण छोड़े जग बंध ॥४॥

आस जास पूरी हरि एतां,

आतम तास म छंटे आस ।

भंजे सकट किते भूवणवार,

दासां जानि कियो प्रिय दास ॥५॥

अर्थ:—पहाद, गज, परीक्षित, भाल और पाण्डवों ने जिसे पहचाना और सूचित भी किया कि साँवरे के समान सेवकों पर कृपा करने वाला अन्य कौन हो सकता है ?

नरासन्ध द्वारा बाँवे गए राजा, अम्बरीष और द्रौपदी ने उनके स्वरूप को देखा । वन्ही द्वारा ज्ञात हुआ कि आपत्ति के समय सहायता करने वाला कृष्ण जैसा स्वामी अन्य कोई भी नहीं है ।

सीता, सुग्रीव, शिव, इन्द्र और यादव-वंशजों ने स्पष्ट रूप से यह धनलाया कि शत्रुओं को मारकर स्मरण करने वालों को कान्तिमान बनाने वाले लक्ष्मीपति के तुल्य अन्य किसको कहा जाय ?

अमुर प्रकृति वाले राक्षस, ग्राह, वाणासुर, शिखी (मयूर ध्वज) कृत्या, दुःशासन, रावण वाली और कंस का, जिसने नारा किया तथा जो धर्ती को बंधन में लेने वाला है, वही सांसारिक बंधन से भक्तों को छुड़ाने वाला है ।

"पृथ्वीराज" कहता है कि जिस हरि ने उपरोक्त भक्तों की आशा पूर्ण की, अतः हे आत्मा ! उसकी आशा का परित्याग न कर । पृथ्वी पर उसने कितनों ही के दुःख दूर किए हैं और सेवकों की पंक्ति में मान कर मुझे भी अपना दास बना लिया है ।

—: गीत ४५ :—

पंथिया रैं हेक प्रीति सदेसों,
कहिजो जाइ आगली केसों।
नंद जसोदा नेस अनेसो,
अम्हा वियां पै एह अँदेसो ॥१॥

एक सु दिन जै गोकलि आयी,
धाइ जसोदा अंचल धायौ।
गोलणी मिलि संगल गायौ,
वीठलैं जाइ समंद्र बसायौ ॥२॥

वीसारी हरी करे बिड़ाणी,
वाणी एह धई बिलखांणी।
रिधि द्वारिका मंडि रजधाणी,
गहिया रीमि रुकमणी राणी ॥३॥

नपणे आँख उर नेसासा,
अदला बिहवल थई उदासा।
उरि अगिलूणी बंधे आसा,
प्रीथ न छंटे जमना पासा ॥४॥

अर्थ:—गोपिणें कहती है कि हे पथिक ! नू केराय के ममत्त हमारा मन्देश कहना कि नन्द और यशोदा भी मशक हैं ! हम भी विगिन हैं !

एक दिन तो वह था कि गोकुल में आकर वह यशोदा का पय-पान कर रहा हुआ । बालों ने भी उसका मंगल गान किया । अब सभी विद्वल भगवान् ने समुद्र तट पर जाकर द्वारिका की स्थापना की ।

विलखती हुई वे कहने लगे कि हरि ने हम को पराया मान कर भुला दिया है । अपनी राजधानी द्वारिका बना कर यहाँ सिद्धि का निवास कर दिया और रानी रुक्मिणी पर रीक गए ।

उन गोपिकाओं के नेत्रों से अश्रु और हृदय से ऊर्ध्व श्वास चल पड़ा और वे विकृत होकर उदास होगई । पृथ्वीराज कहता है कि वे (गोपियों) जन्म पाश को सत्य मानती हुई फिर कभी मिलन की आशा में निमग्न होगई ।

— गीत ४६ :—

हर हलायै जेम तेम हालीजै,

की धणियाँ छँ जोर कपाल ।

माँली दायो दीर्या छत्र मायै,

हँ दोनूँ ले हालस्पुं दयाल ॥१॥

गलिपायत भायै गीसाखो,

गज चाढ़े खर चाढ़ गुलाम ।

मोहरा देव तांदरी महिमा,

रजा सजा मिर ऊपर गंम ॥२॥

आखे हम तुम याही इसवर,

सींधुर पाखै केम सरै ।

चीतागे खर ऊपर चित्रवे,

किशूँ पतली पाँण करे ॥३॥

तू सांमी प्रयीराज तांढग,

लोकां बीजां लाग थलाग ।

रुढ़ी जिक्कौ प्रताप गवला,

भूंदो जिक्कौ अमीणो माग ॥४॥

अथः— हे कृपालु हरि ! आप जिस मार्ग पर चलाने, वमी पर चलना पड़ेगा । आपके समक्ष दास क्या कर सकना है ? आप सिर पर लकड़ियों का गट्टर दें, चाहे छत्र धारण करावें । मुक्त पर आप जो योद्धा लावेंगे, उसे दोना ही पड़ेगा ।

हे भगवान् राम ! आप प्रसन्न होकर हाथी पर तथा रुष्ट होकर घोड़े गये पर चढ़ाइये, मैं तो आपका सेवक हूँ । हे देव ! आपकी बड़ी महिमा है । आपकी कृपा हो, चाहे अभसन्नता, दोनों मुझे मस्तक पर चढ़ानी ही पड़ेगी ।

हे ईश्वर ! मैं आपसे यह निवेदन करता हूँ कि यदि आपने हाथी की मचारी ही माँगी जाय तो कैसे धन पड़ता ? क्योंकि चित्रकार के हाथ में फलम है । यदि वह चित्र में मीची जाने वाली पुनली को गये पर अंकित करदे, तो पुनली क्या जोर कर मरनी है ?

हे प्रभो ! आप मेरे स्वामी और मैं आपका सेवक पृथ्वीराज हूँ । अन्य लोगों से तो अस्थायी संबन्ध है (सच्चा संबन्ध आपसे है) । अतः अपने अच्छे दिनों को आपकी कृपा और बुरे दिनों को अपने दुर्भाग्य का कारण मानता हूँ ।

—: गीत ४३ :—

तथा द्रोपती देखनां जगत अरि तांशता,

मला कर करण हरि जगत भणिया ।

पूरवे जगत हूँ. चीर - हथिणापुरै, ॥१॥

साद .हथिणापुरा जगति सुखिया ॥१॥

थल करण हेकने हेक कूसस थली,

आच श्रुति प्रवादा अरकि ऊगा ।

करण करणा करे कूसन कूसना तणा,

पुर पिन्है सद वसत्र समा पूगा ॥२॥

वार पंचालि विचि द्वारिकां पजावे,

विसत्र—जोधण जोए जोइ वादे ।

अनंत आचागली दास ऊवेलिवा,

अवणि सरुवो अनंत दास सादे ॥३॥

अनस गुण प्रम नक्षयो द्रोपदी सद तणो,

पगुरण तणो गुण नक्षयो "प्रियदास" ।

इलन आकास गुण दूरि पूगा जअज,

राउलो सुगुण रुखमणी—रमण—रास ॥४॥

अ.व.—हे हरि ! सब के देवते जब द्रोपदी का शत्रु (दुःशासन) उस का चीर खोच रहा था, तब आपने उसकी महायता की, जिससे आपके हाथ विश्व की भलाई करने वाले कहे गए । द्रोपदी द्वारा इस्तिना-पुर से पुकार की गई. उसी समय वहाँ चीर बहने लग गया ।

हे कृष्ण ! एक (पांडवों) को स्थापित और दूसरे (कौरवों) को गिराने वाले आपके हाथों की ख्याति प्रत्येक के जानों में पहुँची । हे करुणाकर ! आपकी जय हो ! जब आप द्रोपदी की सहायता के लिए तत्पर हुए, तब मानो अनेकों सूर्य उद्भूत हुए हों, इस प्रकार आपका

तेज प्रमारित हुआ । इधर आपके पास दोपदी की पुकार पहुँची, उधर दोपदी के पास अनेकों चीर पहुँच गए ।

पंचाली (दोपदी) की पुकार द्वारिका में पहुँची । हे विश्व-द्रष्टा ! आप उससे पूर्व ही अवगत हो गए । हे अनंत प्रभो ! आप भक्त की रक्षा के लिए मदा आतुर रहते हैं और पुकार सुनने में आपकी श्रवण शक्ति अपार है यह (घात) मदा से भक्त कहते आए हैं ।

हे रुक्मिणी रमण ! यह आपका दाम पृथ्वीराज कहता है कि दोपदी की पुकार पर उसके गुण क्षण में ही कानों द्वारा आपके हृदय में प्रवेश कर गए तथा आप अपनी प्यारी पद्मिनी (तुल्य रुक्मिणी) के गुण (दोपदी की रक्षा की स्मृति में) मूल गए । वही समय आपके गुणों की प्रशंसा पृथ्वी और आकाश में साथ २ फैल गई ।

—: गीत ५८ :—

असमान कुब्जे गत माला उड़ीयण, रार बिन्हे मूरज राकस,
 यल मेखली घणायां एहो, अनंत मेहर तोनु आदेश ॥१॥
 भुज-गिर सिखर रोमराय अदभुज, तोय किग्वा सायर त्रिण च्यार,
 विष काला बलता मुखवाला, जूना नाथ अनंत जुहार ॥२॥
 बीऊ चित्त वात साच जै वाचा, असी च्यार लख आवतम आय ।
 गात लात सां सहणा गूढ़ां, निमसकार हरि बूढा नाथ ॥३॥
 नाह छत्रोस राग वाजै नित, अकत्रोस में गुरुद आरोड,
 सोळें से जोगणी सहेतो, जोगी घरवारी हरि जोड ॥४॥
 लख घट मांजे घड़े मवा लख, कलिषो जाअे नहीं क्षिणी,
 इण अवसता तणा तो ईसर, धोरु धोरु बहूँ लोक धणी ॥५॥

अर्थ:—हे अनन्त कृपालु ! तुझे नमस्कार है । तेरी टोपी के रूप में तारे एवं अविरोध सूर्य चन्द्र हैं तथा पृथ्वी ही तेरी कर्धनी है ।

हे श्याम वर्ण 'पुरातन पुरुष ! मैं तेरी वन्दना करता हूँ । गिरि-शिखर ही तेरी भुजाएँ हैं, पृथ्वी से वत्पन्न होने वाले (वृक्ष) ही तेरी रोमावली है, सप्त सिन्धु और अग्नि ही तेरा मुख है ।

हे पुराण पुरुष हरि ! तू अनुचित को भी उचित कर धताने वाला, चौरासी लाख प्राणियों में वास करने वाला और भृगु का पद-प्रहार सहन करने वाला है ।

हे गृहस्थ योगी ! छत्तीस ही राग रागिनियों के रूप में तू प्रतिध्यनित होता है । (भक्त पर) आपत्ति आने पर तू गरुड़ पर आरोढ़ होने वाला है और सौलह सौ योगिनी स्वरूपा प्रियवमाओं का स्वामी है ।

हे त्रिनोरु पति ! तेरी धार २ वन्दना करता हूँ । तू लाखों का नारा कर्ता और सवा लाख का निर्माता है । तू ऐसा है कि तेरा कोई भी वर्णन नहीं कर सकता ।

ग्वयिता—परमानन्द बीठ

—: गीत ४६ :—

अंग दिये लाख अंगि अंगि लख उतमंग,

उतमंग मुख घै लाख अनंत ।

मुखि मुखि. रसणि दिये लख मादव,

मुणि तौ सकां न सुगुण महंत ॥१॥

१ यह कवि चारण जाति की बीठ शाखा का था । विशेषतः इस शाखा के चारणों का निवास स्थान बीकानेर राज्य में पाया जाता है । इस कवि का

सू तण कोटि तिणि तिणि कोटि शिर,
 सिरी मिगी कोटि वदन समराथ ।
 वदनि वदनि छे कौटि जीह बलि,
 अपि ता गुण न मकां जगनाथ ॥२॥

धड़ धू कोटि कोटि धड़ि धड़ि धू,
 कोटि धूवां धू जिगन करे ।
 जिगनि जिगनि छै कोटि तवन जो,
 प्रिम तो सुगुण न पार करे ॥३॥

पप धू वदन जीह चित्रवाणे,
 पारब्रह्म कुण लामे पार ।
 करमाखदो छोडयो केशव,
 क्रमबंधण हुंता करतार ॥४॥

अर्थ:—हे मावव ! यदि लाव्यों अङ्ग, एक २ अङ्ग पर लाव्यों मस्तक, एक २ मस्तक के लाव्यों मुख, एक २ मुख में लाव्यों जिह्वा दे, तो भी तेरे मटान् गुणों का वर्णन नहीं कर सकते ।

हे जगदीश्वर ! एक शरीर के स्थान पर कराड़ शरीर, एक २ शरीर पर करोड़ मस्तक, एक २ मस्तक पर करोड़ मुख और एक २ मुख में करोड़ जिह्वा दे, तो भी तेरे गुण-कथन नहीं किए जा सकते ।

काव स्थान अङ्गन है । यह कवि प्राचीन है; क्योंकि इसकी रचना १७१२ के संवत् में होगई है, जो मारिच संवत् १७१२ में सिध्दान्त है । प्रायः इसकी कविता ईश्वर मन्मथी तथा उपदेशात्मक है ।

हे परमेश्वर ! एक शरीर के स्थान पर करोड़ शरीर, एक २ शरीर पर करोड़ मस्तक दे और उसके द्वारा करोड़ यज्ञ किए जायें, एक २ यज्ञ में करोड़ों जप किए जायें. फिर भी तेरे गुण का पार नहीं पा सकते ।

हे परब्रह्म ! शरीर, मुख, मस्तक और जिह्वाएँ उपरोक्त रूप में होने पर भी तेरा कोई पार नहीं पा सकता । हे स्रष्टा कैराय ! तू मुक्त कर्मानन्द को कर्मों के बन्धन से मुक्त कर दे ।

रचयिता—परशुराम वैष्णव

—: गीत ५० :—

करूँ भामणां जेण नरसिंघ थागी कला,

आद लग पजोवगु संत आढा ।

गाजते गाज असमान गूँजाड़ियो,

फाड़ियो खंम चौकाड़ फाड़ा ॥१॥

पेज पइलाद घण नाद ची पालते,

असुर दिस मालते बोल आँटा ।

जाणियो गयण गुंजार आथर जुवो,

बिहर पाथर हुवो न्यार बाँटा ॥२॥

मावियो भगत चो दैत अण मावियो,

आवियो चखां धिकतो अगारों ।

गढ़बढ़े गयण पनरं छहूँ गढ़िड़ियो,

बढ़िड़ियो लमच हूँ चहूँ बारों ॥३॥

सात दध भलभल सलसल सेस मिर,

चलचले, जई प्रथमी चढी चाक ।

दिरण कुस हायल सल ऊभो हरी,

नले, प्रसल कियां चाडियां नाक ॥४॥

अर्थ:—हे नृसिंह ! आपके चरित्रों से विश्वास होता है कि आप आदि से ही संतों के रत्नक हैं । आपने गर्जना करके आकाश को प्रति-
ध्वनित कर स्तंभ को विदीर्ण कर दिया ।

हे ऊर्ध्व घोष करने वाले ! आपने दानव के अंशुशंख धोलने पर प्रह्लाद की प्रतिष्ठा का पालन किया । जिस समय आपको गर्जना से आकाश गूँजा, उसी समय पत्थर से निर्मित दृढ़ स्तंभ फट गया ।

हे नृसिंह ! जिस समय आप आँखों से अङ्गारे बरसाते हुए सामने आए, उस समय आपका वह स्वरूप भक्त (प्रह्लाद) को मुहा-
यना तथा दानव (प्रह्लाद के पिता) को भयानक लगा । (आपको गर्जना) से आकाश डगमगा गया और इक्ष्वाकुसुत संख्या वाला स्वर्ग भी गूँज उठा तथा स्तंभ चार भागों में फट गया ।

हे हरि ! आपके आतंक से मातों समुद्र छलकने लग गए । शेष नाग के मस्तक हिलने लगे, जब आपने अपने कराघात से क्षिरपयस्विणु को मारा और आप त्योंही चढ़ा, नामिका को फुला कर गड़े हुए तब पृथ्वी चलायमान होकर चक्कर काटने लग गई ।

—: गीत ४१ :—

निमो गरीस रा अंस येकादममा समीर नंद,

कपीस रा मित्र कोस छवीस रा काल ।

राखसेस (जूटे) जिठै केसरी कीस रा हणू,

त्रिलोकीईस रा वाज्रै तो भुजां ब्रंवाल ॥१॥

सुग्रीव पाथ रा मुदि पाथ रा परम सखा,

धिरू दै आथ रा राम गाथ रा थानक ।

विदे बीस हाथ रा लंकैस जटै महावीर,

अजोष्या नाथ रा घुरै तो भुजां आनंक ॥२॥

पन्चमी प्रचंड पांख चांपणो पहाड़ पगां,

उतंगी भांपणां सिधु मंगे आसमान ।

अड़े आसु रैस जटै तूझ खोइखो अभंगी,

सीता नाथ नखा जंगी सबहे सादान ॥३॥

मीम लटै सेस न जाय मार भोम सपो,

कटै धू लंकैस रा महेस रा कामक ।

आंचा तूझ ऊपरा दिनेस रा ब्रसेस ऊठै,

टहकके जीत रा गधवेस रा टामक ॥४॥

क्रोध भाला कराला करां स किरमाला बटे,

जटै राण जरदाला अताला जुइन्त ।

वापनद बीजेकारी तूझ पराणा जती बाला,

राजा रामचंद्र बाला ब्रंवाला रुइन्त ॥५॥

अर्थः—जैलाश पर्वत के स्वामी, एकादश रुद्र के अंशधारी,
हे पवन पुत्र ! आप सुग्रीव के मित्र और छायामात्र मीता का हरण

करने वाले (रावण) के काल स्वरूप हैं। हे केशरी कुमार हनुमान ! जिस समय शनवेश मामना करने को यदता है, तब आपके ही बल पर त्रिनोक पति (रामचन्द्र के) रणराश बजने लगते हैं।

हे महर्षीर ! आप मुभीव के पथ का अनुसरण करने वाले और पथिक (रामचन्द्र) के परम भ्राता हैं। जिस समय घोर भुजाओं वाला लक्ष्मण युद्ध के लिए भिड़ता है, तब आपके ही (भुज) बल पर अयोध्या पति के नक्कारे बजते हैं।

हे प्रचण्ड काय वाली धातुर ! आपने पग से पर्वत को दबाकर ऊँची बड़ान ली और आकाश मार्ग से विचरण कर आप समुद्र को लौघ गए। जब अमुर पति (रावण) जुट पड़ा, तब आप उसके विद्रोही बन गए। आप जैसे अभद्र धीर के कारण ही मोनापति के नक्कारे बड़े जोरों से बज उठे।

हे सूर्य को मम जाने वाले ! जिस समय पृथ्वी का भार बहन कर शेषनाग के मस्तक नमने लगते हैं और महेश द्वारा घर पाप हूण लंरेश के मस्तक कटने लगते हैं, उस समय तेरे हाथ ऊपर बठे हुए देख कर राघवेश (रामचन्द्र) के विजयवाद्य बजने लगते हैं।

हे विजयी, पवन-पुत्र, बाल यति ! जिस समय रावण के कवच-धारी पीर क्रोधाग्नि की ज्वाला फैलाने और तलवार हाथ में लिए द्रुत गति में जुट पड़ते हैं। उस समय तेरे ही बल पर भगवान् रामचन्द्र के रणराश जोरों से बजने लगते हैं।

रचयिता—बुद्धासंढायच

—: गीत ५२ :—

पड़ी भीड़ जल हुयतां धरी पल,
ररी करुणां ग्रहण ग्राह रीधी।

अही अरी तजे आयो बही आतुरी,
करी री स्पाहि जद हरी कीधी ॥१॥

हरण कस्यप दनुज कोपियो पुत्र हरण,
फाड़ पाइण असह पाड़ फीको।

राखियो बाल ग्रहलाद तारण तरण,
नरहरी चरण री सगण नीको ॥२॥

धीर पाचूं पचन हारतां समा बिच,
हुई तकरीर पांणप हटायो।

द्रोपदी चीर ग्रह खेंचता दूसासण,
अरज सुणतां समो भीर आयौ ॥३॥

भरोसो गल दिल तेण भगवंतरो,
जयर बलवंत खल जेण जीता।

वीमल जस गावगुण ग्रंथ निमदिन 'बुधा',
संत जन सिहायक कंथ सीता ॥४॥

१ यह संढायच शास्त्र का चारण कवि था। इसकी रचना १८०० के अन्त
और १८०० वि० स० के आरंभ की मिलती है। इसका स्थानादि अज्ञात है।

अर्थ.—प्राह्व द्वारा प्रसा हुआ हाथी जब जल में डूबने लगा, तब उसने करुण पुकार की, उसे मुन कर हरि ने गरुड़ को छोड़ दिया और पहले ही दौड़ कर उमकी रक्षा की।

दानव हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र का नाश चाहा, उस समय तरण-तारण नृसिंह ने पत्थर निर्मित स्तंभ को विदीर्ण कर इस दानव को तेज हीन कर दिया और प्रह्लाद को बचा लिया। अतः ईश्वर के चरणों की शरण उत्तम है।

पाँचों पाण्डव, समा में श्राव्य हार गए और ब्राह्म विवाह होने पर फान्ति हीन होगे। जब दुःशासन ने द्रोपदी का चीर पकड़ कर लीचा, इस समय उमकी पुकार सुनते ही प्रभु सहायता के लिए शीघ्र आ उपस्थित हुए।

“धुद्ध” कवि अपने को मंत्रोद्धित कर कहता है नू इस भगवान् पर दृढ़ विरपाम रख, जो घड़े २ बलवाले दुष्टों को जीतने वाला है। संतों का सहायक एक मात्र मियापति है। अतः नू उसी के निर्मल यश-गान और गुणों को ग्रन्थ रूप देकर पढ़ता रह।

—: गीत ४३ :—

घरियो पण जनक यसो मन धारे,

धनक पनाक चटाय धरे।

महपत आय स्वयंवर माँहे,

बसुधा कैवरी त्रिको वरे ॥१॥

तात हूँत अघकी प्रतजीया,

माँमल बात कहूँ मरसाल।

का ध्वस्त कर उस पर अधिकार करने वाले प्रभु महान् से भी महान् हैं !

जिसने जल में डूबते हुए हाथी को आपत्ति में पड़ा देख उसकी रक्षा की और तन्तु में फँसाने वाले घाह से मिड़ने को “राम” कहते ही वह चतुर्भुजधारी चक्रपाणि गरुड़ को छोड़कर पैदल ही दौड़ पड़ा । ऐसा एक मात्र हरि ही है ।

जिसने बंसी बजा कर वृन्दावन में रास रचाई और त्रिभुवन की स्त्रियों के मन मोहित हो गए । ऐसा कृष्ण, जो अनन्यात्मा है, वह न तो बालक, न युवा, न वृद्ध ही कहा जाता है । उसका रहन सहन दोष रहित है ।

अपने सहस्र फलों से रहते हुए भी शेषनाग जिसका पार नहीं पा सकता । देवता एवं इन्द्रादि भी उसकी सम्पूर्ण स्तुति करने में अराक्त हैं । शिव, ब्रह्मा और मुनिगण जिसके गुण गान करते रहते हैं । ऐसे भगवान् रामचन्द्र हैं (उनका बार २ स्मरण करते रहना चाहिए) ।

—: गीत ४५ :—

बणियो गढवीर पैकूँठ बरोबर,

रात दबस ब्रह्म लोक रटे ।

लंका भाजण डार लछिमण,

ऊखो धानक धार उठै ॥१॥

दन वालियो टलियो दुख दालद्र,

ऊजलियो तालो अशपार ।

महाने सद दाता हृद मिलियो,
सांवलियो रूढो सरदाग ॥२॥

आद्योजी स्युकुल उजवाला,
रिरदाला भद माहावल ।
मंजण दस कंध च्यार भुजाला,
काला घन अदभूत कला ॥३॥

जाम्भ अदंग भालरां जणहण,
गणहण नोपत नाद घुरे ।
भैरी संख भूंगलां मणहण,
के किरजण जे सबद करे ॥४॥

धानक कर भू तार धारणा,
पदन छबी अथ भूत वणी ।
सेस रूप अवतार सांवरो,
पूत बढो गढपोर घणी ॥५॥

अर्थः—रातदिन तीनों लोक के निवासी गढ़पौर स्थान को वैकुण्ठ तुल्य मानते हैं । क्योंकि यहाँ पर लंका को नष्ट करने वाले लक्ष्मण धनुष धारण किए हुए दृष्टि गोचर होते हैं ।

हमारे अच्छे दिन हैं कि सोंवरे जैसे स्वामी के मिलने से हमारी दरिद्रता दूर होगई और भाग्योदय होगया ।

यह रघुनुल को वज्रजल करने वाला, विरूधारी महान् पौर, दश-
कंधर का नाराक, चार भुजा धारी श्याम स्वरूप है, इसको भज्य है ।
इसकी अदभुत कला है !

इनके द्वार पर चाँग मृदंग, मल्लारे, नोबत, भेरी, शंख और मुझल (एक प्रकार का बिगुल) आदि बजते रहते हैं ।

पृथ्वी के उद्धार के लिए धनुष हाथ में लिए ये अद्भुत शोभा पाते हैं । यह शेषावतार श्याम गढ़बोर का स्वामी बड़ा सजग वीर है ।

—: गीत २६ :—

जटा ऊपर विराजे गंगा सनगा सरूप जोगी,
 भांग का अरोगी मोगी भुजालो भूपाल ।
 गले कंठ रुद्र(मुण्ड)माला केकी काला नाग गाजे,
 विराजे सदाई विलोह रूप मैं विसाल ॥१॥

मलक्के कपाला चंद्र ज्वाला भाला नेत्र भजे,
 चट्टै कूल आकवाला बहाला आचार ।
 नेजाला गजाला नेक घजाला सोपाण नोधे,
 पारवती वाला नाथ नमां नो अपार ॥२॥

वाघवर जला घर मधार विराजे वदां,
 नाथ धूर हरा हरं अमरं त नाम ।
 दसे सरं वरं दाता नील कट नेक नामी,
 समरां प्रथम सदा पारवती सांम ॥३॥

मोज रा वराम ईम पमारा कुरंग मेटो,
 नवा खंडां नमां ताइ पारवती नाथ ।
 अमरो तुहारी मारी अवतारी मुने एक,
 हेमरा हजारी दीजे मघा गीजै हाथ ॥४॥

अर्थ:—हे सुन्दर स्वरूपधारी योगी ! आपकी जटा पर गंगा सुरोभित है । आप भाँग पीने वाले हैं । आपकी भुजाओं पर मर्प लिपटे हुए हैं । गरल और मुण्डमाला में आपका कंठ सुरोभित है ।

आपके ललाट पर चन्द्रमा चमचमा रहा है और माथ ही त्रिनेत्र से अग्नि ज्वाला फैल रही है । आप पर आरु के पुष्प चढ़ाए जाते हैं । आप बड़े उदार हैं । आपकी सीढ़ियों पर नैजा धारी, गजारेही और ध्वजाधारी बार २ मस्तक नमाते हुए देखे गए हैं ।

हे पार्वती के स्वामी नीलकंठ ! आप बाघंबर धारण करने वाले हैं । आपके मस्तक पर जल प्रवाहित होता रहता है । आप वीर पुरुषों के, हरा के और देवताओं के स्वामी हैं । देशाधिपों को आप घर देने-वाले हैं । अतः मैं मधमे पहले आपका स्मरण करता हूँ ।

हे पार्वती पति शिव ! आप मुखदाता हैं । अतः यदि पामरों द्वारा क्षता होता हो, उसे दूर कर दें । आपको नव खण्ड नमस्कार करते हैं । मुझे एक मात्र आपका ही आश्रय है । अतः मेरे कार्य साधन के लिए सदस्य २ मून्य के घोड़े प्रदान कर (युद्धादि) में मदद मेरा माथ देते रहें—यही मेरी विनता है ।

—: गीत ४५ :—

पृथ्वी मय वेद कला कोई पंडित,

नरमल होश्री को दन बार ।

सूधा (सूँ) - सूधो हे साहब,

कपटी - सूँ कपटी करता ॥१॥

चुवभुज भजो न्याय गत चालो,

पग दे मू तर उपाड़ो पाव ।

नांके रात दवस घण नाभी,

डाव करे जण उपर डाव ॥२॥

जग मोला नरवे मत जाणो,

सांची एक मजन री संद ।

पटके अण चीत्पां परसोतम,

फँद मूथे जणरे सरफंद ॥३॥

भरम री पास तोड़ हर भज जे,

तज जे कूड़ कपट री तांन ।

जो (क) दा चत मोलहज जाणो,

(तो) मोलां रे मीढ़ू भगवान ॥४॥

अर्थ:—हे मानव शरीर ! तू अपने मन को पवित्र करेगा ? मोचहो, शिव, वेद और पंडितों का कथन है कि राष्ट्रा साचे के साथ मीधा और कपटी के साथ कपटी है ।

चतुर्भुज विष्णु का स्मरण कर न्याय के मार्ग पर विचरण करो और संभल कर कदम उठाओ । क्योंकि दाव देनेवाले पर ईश्वर रात-दिन दाव लगाता रहता है ।

हे भोले मानव ! अपने आपको मृतरे से बचा हुआ मत समझ । मय से मरुचा संबंध ईश्वर मजन का ही है । यह पुरुषोत्तम जाल करनेवाले को जाल में डाल देता है ।

थतः भ्रम का फंदा तोड़ कर ईश्वर भजन कर और भूठ तथा कपट का त्याग कर । यदि तुम ईश्वर को भोला मानने हो, तो ठीक है, यह भोलों का ही साथी है ।

—: गीत ५८ :—

करम जिके प्रारब्ध क्रीयमाण सचत किता,
जिता किय छता हुय आप जोळे ।
लाछ मरधार जे लोम ममता लियां,
गता दुख भता कर मूक रोळे ॥१॥

भुलावे योग जनमे जनम भ्रमावे,
रमावे कौतकी भाव रुख सूं ।
जिके हर रखे निज पात रो जमावे,
समावे नांही पद आद मुख छूं ॥२॥

फदे स्वेद जरा ईड अदभूज कदे,
पिड नाना तरह मेख पाखे ।
कसट मेटन परम करूं दिनती हिसी,
रसी गुण ग्रहें ग्रह बसी राखे ॥३॥

जीव अंस राजा रो कहे मारो जगत,
दिये साखी अंगम निगम डाला ।
माजे गरज मुण्य अरज अरज असरण भरण,
“बुधा” री करण प्रवपाल वाला ॥४॥

अर्थ:—हे पद्मीपति ! जितने भी कर्म संचित किए हैं, वे सब आपकी गोदी का सहारा लेकर किए हैं। वे आपके ध्यान में हैं। लोभ और मोह से लिप्त होने के कारण वे मेरे लिए सुतरनाक एवं नाराकारी हैं।

हे हरि ! मुझे विषय वासना भूल में डाल जन्म २ में भ्रमती रहती है। कौतुकी बनकर इसने एक प्रकार से खेल रच रक्खा है और मुझे अपना दाव दिए हुए है। इसीलिए सुखपूर्वक परमपद की प्राप्ति नहीं होती।

हे दुःख नाशक प्रभो ! मैं स्वेदज, अण्डज और पित्तज रूप में विविध शरीर धारण करता रहता हूँ। रसिकता के कारण मुझे काम, क्रोध और मोह गृहस्थ से दूर नहीं पड़ने देते। मैं आप से क्या विनती करूँ (आप मय जानने वाले हैं)।

निगमागम साक्षी है और संसार भी कहता है कि जीव ईश्वर का अंश है। अतः मैं “बुद्ध” विनती करता हूँ कि हे अशरण को शरण देनेवाले ! मेरी इच्छा प्रति कर पोषण करते रहना।

—: गीत ४६ :—

कही घेद ग्रन्थां कितां बात सो सही कर,

गही ज्या लही विश्व सत गावे।

ध्यान धरणी धरण करे चित धीर स,

परम गत त्रिके नर अवस पावे ॥१॥

उडतो चीत दस दिसं ग्रहे-आशियाँ,

थिरु कर मैवर गुञ्जार थल में।

रहे आट्ट पहर मगन निभ रूप मे,
जाय नहै वहे संसार जल में ॥२॥

इंदु दुडियंद ऐरण घरां आणिया,
जाणिया इसी पर अलख जावे।
ठिक करे सुन्न मंडल वसण ठाणिया,
प्राणिया त्रिके मुख अमय पावे ॥३॥

प्रया मुत्त पैण भावे नथी वाच छुं,
निमल हर नाम नह करे न्यारो।
स्याम रंग हिचे आराधियो सांच छुं,
साधियो "बुधा" तव पंथ सारो ॥४॥

अर्थ:—“बुद्ध” कवि कहता है कि वेद और ग्रंथों में वर्णित बातों को ठीक मान कर, जिसने प्रदण किया और ईश्वर का ध्यान चित्त में धारण किया, उसीने परम गति प्राप्त की। उसके साक्षी सन्त हैं।

उपर उपर भ्रमण करते हुए चित्त को घरा में करके आत्म गुंजार स्थल (मतिष्क) में स्थिर कर अपने वास्तविक स्वरूप में मगन रहने वाला हम संसार सागर में नहीं डूबता।

नामा रंघ द्वारा चलने वाले सूर्य-चन्द्र स्वर श्वाभ द्वारा स्वीच-कर एक स्थान, जो शुन्य मण्डल (मस्तक) है, वहाँ पर लाने से अलख स्वरूप जाना जा सकता है और वही निर्भय मुक्त को प्राप्त करता है।

मुख से वृथा वचन न कहे और निमेष मात्र के लिए भी हरि नाम को नहीं भूले तथा श्याम के प्रेम की सच्चे मन से उपासना करता रहे, यही पुरुष तत्त्व मार्ग का साधन कर सकता है।

—: गीत ६० :—

रटे सेस सनकाद ब्रह्माद ध्यावे रसण,

ध्यान मुन सारदा ईस धारे।

सार आगम निगम संत जन कहे सह,

विसारे मती नर देह बारे ॥१॥

दिये करतां जगन ज्यादा मन हुलासे,

आद मारग लखे पग न अटके।

अगन तन आंच मिट मगन थावे अडग,

भरण इम्रत लगन लहै भटके ॥२॥

वीण अणहद अवर घट रुण भुण बजे,

तंत भरणकार धुन संख तरजे।

टिकोरां भालगी डंक तंकार बण,

ग्रेह मभ मेघ अणरेह गरजे ॥३॥

त्रवेणी मारगां सरत कर लहे तत,

प्रगट यित नाम ऊर कंठ प्रवसे।

गंग निरमल करे अङ्ग सोई ऊषगत,

नीर हेको थियै नदी नवसे ॥४॥

निरख जिण माहि ईक नाव हर नाम री,
 हुवे सिमरण अठे केवटणहार ।
 विघन सत पंध रा टाल केता विकट,
 प्रभु सोई उतारे ऊदघ भवपार ॥५॥

घोर पाचू तणो जोर नई को चले,
 मरम उर भरम री ग्रन्य भागे ।
 कदन क्रम यियां प्रम सदन त्रकुटी कमल,
 जदन धण स्पाम रंग ओत जागै ॥६॥

कुमत फाने चली खिली सद गत कली,
 भंवर मन टली अमलाख भवणा ।
 निरत ऊजल हरम चढी परचे निरख,
 मुखे ररंकार रट नीक भवणा ॥७॥

भोर तडव करे कुसम अलसी मही,
 हरी अनरूप माया हुसासे ।
 महज सिंघासणा क्रन्त रतना सरस,
 मलक निभ नूर निज रूप भ्यासे ॥८॥

हुवां दरसन यिया पाप सह कोह जम,
 मिठी आवागमण निमस मांही ।
 दिव्य नयणा दग्म देखतां दयानिध,
 मुच्चदानंद हर आप सांई ॥९॥

पांच तत हुँत ब्रह्मंड पिंड परगिया,

ऊरध मुख कमल चक नाल ऊलटी ।

जिका गुर गम गही लही ज्यां सोध गत,

सकल विध कामना थई सुलटी ॥१॥

पाप अर पुन्य सुख दुख धखीये रखा,

कला दुविध्या सणी हुई काची ।

राखजे जिकण निज धाम सीता रख्य,

“सुख बुधियो” करे अरज सांची ॥११॥

वर्धः—शेष, सनकादिक और ब्रह्मा जिसका स्मरण करते हैं, मुनि, शारदा एवं शिष्य जिसके ध्यान में लीन हैं, संतजन उसी को निगमागम का मार कहते हैं। उसे तू मनुष्य शरीर पाकर मत भूल ।

हृदय से इस प्रकार मानसिक हवन करने से मनको अधिक प्रमत्तता होती है। उस आदि मार्ग की खोज करनी चाहिए, जहाँ नीचे को पैर अटकते तक नहीं, जिससे शारीरिक अग्नि का ताप मिटकर स्थिरता आजाती है और शीघ्र ही ईश्वर लगन रूपी अमृत का स्रोत यह चलता है ।

धीमा, घंट, तंत्री और शंख के रूप में रुन भुन करता हुआ अनहद नाद गूँज उठता है। माय ही टिकोरें मयलरें आदि समाधि गृह में घेहद गर्जने लगती हैं ।

ईश्वर में लीन होने का मार्ग हो यहाँ त्रिवेणी है। यह प्रकट नाभि से कंठ में बहने लगती है। ऊर्ध्वगति ही गंगा है, जो शरीर को निर्मल कर देती है। उनके संमिलित होने पर नौ मौ नदी नालों के तुल्य उनका विस्तार कहा जाता है ।

ऐसे अगाध जल में एक मात्र हरिनाम ही नौका है और स्मरण ही केपट है। सन्मार्ग ही विकट विघ्नों से टालने वाला और प्रभु ही हम भयमागर से पार करने वाला है।

घोर स्वरूपी एवं विकार उत्पन्न करने वाली पाँचों इन्द्रियाँ का बल नहीं चलता, भ्रम और और मर्म की गाँठ खुल जाती है एवं कर्मों का नाश हो जाता है। भृङ्गुटी और मस्तक में प्रभु-ध्यान रूप में आ उपस्थित होता तथा है, तब धनश्याम की अंग-ज्योति का आभास होने लगता है।

बुद्धि किनारा फाट जाती है एवं सद्गति रूपी क्ली मिल उठती है, जिसमें आत्मा रूपी भ्रमर इधर उधर भ्रमण करना छोड़ कर उस पर सुगम हो जाता है। प्राणी ईश्वर के अनुराग रूपी इज्जल महल पर आसुत होकर आन्तरिक ध्यान को मत्ती प्रकार मुनने लगता है।

जिस प्रकार मयूर का अलम्बी के सूक्ष्म पुष्प पर नृत्य करना अभिभव है, उसी प्रकार मूक रूप माया में विराट् रूप हरि विनोद करते हुए दिग्दाह देने लगते हैं और स्वामाधिक रत्न सिंहासन पर उम ज्योतिर्मय की ज्योति में मिलती हुई स्वज्योति को प्राणी देने लगता है।

इस प्रकार हे दयामिथो ! हे हरि, रुचिदानन्द ! आपके साक्षात्कार से पाप नष्ट हो जाते हैं तथा निमेष मात्र में प्राणी आवागमन से भी छुटकारा पा जाता है।

गुरु से ज्ञान प्राप्त कर मुख को ऊँचा एवं प्रीति को नीचे कर मूकमण्ड (प्राणी) को पंच तत्व से हटा कर, जिसने ब्रह्माण्ड (मस्तक) में स्थान दे दिया, 'उमरी सब इच्छाएँ' (ईश्वर प्राप्ति) के अनुकूल बन आती हैं।

“बुद्ध” कवि कहता है कि हे सीतापते ! ऐसे पुरुष, जो पाप-पुण्य सुख-दुःख, फला और दुःखिधा से ध्वराएँ हुए हैं, उन्हें आप सँभाल लेना और अपने पास स्थान देना । यही मेरी सच्ची विनय है ।

रचयिता—भगवान दान

—: गीत ६१ :—

माहा रोग जामण मरण सदा सेवे भिनय,
हुवा करमा बसीभूत हाले ।
बडो अथचंय जुड़ियो परब वीसरे,
भूट तज हरी (हारे) कपून भाले ॥१॥

वेद संतां समजपाय सोधी विगत,
ग्यान गुर प्रमोधी जुगत गन सूं ।
ओपधी प्रकासक जाणधारी ऊवर,
चाह जाहर करी विमाल चित सूं ॥२॥

सेस ब्रह्माद माहेस सनकादिकां,
ध्रूव प्रह्लादिकां अगंम धिरणा ।
कुसल नर नाग रग दनुज मुनिजन कितां,
लही सा बत कही सहित लपणा ॥३॥

वेद सासत्र अवर पुराणा विचालां,
भेद गमायणा समर माखी ।
वाण्य पद छंद संता सबद विचारो,
सरस जग दीर्य मोई परस साखी ॥४॥

जाय रुज अवस आवा गमख जीव री,
 कथन सत वादियां सांच कहियो ।
 बीसर मत नाम सो ईसर निस दिन 'बुधा',
 राम रस लियो सोइ अमर रहियो ॥५॥

अर्थ:—मनुष्य आवागमन रूपी महान् रोग की उपासना करते रहते हैं और कर्मों के बशोभूत होकर चलते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि अच्छा अवसर मिलने पर भी वे असत्य का त्याग कर हरि स्मरण नहीं करते।

वेद और मंत्रों ने जिसे खोज कर समझ पाया और विशेष मुक्ति पूर्ण संसार को गुरुतर ज्ञान दिया एवं निर्मल चित्त से उन्होंने इच्छा पूर्ण प्रकट कर दिया कि ईश्वर का नाम ही मंजीवनी बूटी है।

शेषनाग, ब्रह्मा, शिव, मनकादिक, ध्रुव और ब्रह्माद आदि भक्तों में अवगण्य हुए तथा नर नाग, पक्षी, दानव एवं स्त्रितने ही पक्षी एवं दत्त मुनि, जिन्होंने (ईश्वर विषयक) खोज की और उसका विस्तार महित पूर्ण कर बनाया।

वेद शास्त्र, पुराण एवं रामायण में युद्ध-वर्णन करते समय ईश्वर के भेदों को प्रकट किया है। निर्वाण पद प्राप्त करने के लिए मंत्रों की रचनाओं पर विचार करना चाहिए। उन्होंने साक्षान् साक्षी रूप में ही संसार को अपनी देन दी है।

सत्यवादी पुरुषों ने सत्य कहा है कि जीवात्मा आवागमन रूपी रोग से अवश्य मुक्त हो जाता है। "बुद्ध" कवि अपने को संबोधित कर कहता है कि तू उस ईश्वर को मत भूल, जिसने राम नाम रूपी रस का पान कर लिया, वही अमर हुआ है (अन्य तो आवागमन के चक्कर में पड़े ही रहे हैं)।

रचयिता—रुपा वारहट

—: गीत ६२ :-

ग्रहियो गजराज तंत जल गहरे,

वे आंगुल सुएडाडैड वार।

करणा-करण नाम छल केसव,

पाला सुण दोड़ियो पुकार ॥१॥

हर हुवे पागाह मार हरणायख,

मैहै काढी पाताल भँभार।

दूजोई हरणाकुस दलियो,

पेहेलाद क सांवळे पुकार ॥२॥

करे वसवा अंतरं केसव,

वधियो द्रोपद चीर वसेख।

मो मुख गणया न जावे माहव,

असा प्रवादां कीध अनेक ॥३॥

दीन दयाल संता सुरा दायक,

करण-करण करण सिध काज।

माला पंड हुँगा सीतावर,

मेटी जे रुगपति महाराज ॥४॥

अर्थ:—हे दयालु केशव ! आपका नाम जग-रक्षक है; उसी के
नुसार जब गहरे जल में हाथी माह-तंतु द्वारा प्रमा गया और दो

अंगुल ही उसकी मूँड बाहर रही, तब पुकार सुनते ही आप पैदल दौड़ पड़े।

हे श्याम, तन धारी हरि ! आपने वाराह रूप धारण कर हिरण्याक्ष दानव को मार गिराया और पाताल से पुनः पृथ्वी को ले आए तथा प्रलहाद के पुकारने पर हिरण्यकशिपु को नष्ट कर दिया।

हे फेरार ! कौरव समा के बीच में आपने द्रोपदी का चार घड़ाया। आपकी मेसी अनेक ख्यातियाँ हैं; जिनका मुख द्वारा धर्षण नहीं हो सकता।

हे दीनदयालु ! संतों के मुख दाता, करुणावर, कार्य सिद्ध करने वाले, मीतापति रामचन्द्र ! मेरी पुकार सुन कर मुझे भी नेहरु के रोग से मुक्त करिए।

रचयिता—वल्लभगाम आशिया

—: गीत ६३ :—

मदालाग दरियाव छल गंगर ओटा मंही,

लाग दोटा दवे जरुण लारी।

धाय मोबिंद नज विरद चित धारियौ,

तारियौ; दयंद -- त्रिम गाय लारी ॥१॥

१. ये कवि आशिया शाखा के ब्राह्मणों में प्रायः पञ्चदश कविगण ब्राह्मणों के पूर्वज थे। ये वि० सं० १८०० के अन्त और १८०० के पूर्वार्ध में हुए थे। उन्होंने महाभारत अथर्ववेद के संबंध में "कीर्ति-वक्ता" नामक ग्रन्थ लिखा। यह ग्रन्थ पञ्चदश में उनके वंशजों के पात्र अभी तक पत्रकारिता व्यवस्था में साक्षित है।

डाण सर लागः अंब छौल पड़तां डमर, ॥२॥

उथल पग ममर मभ्र दबत आपी ।

दीन बंध दौड़ सुणतां जगत दापियौ,

राखियौ मतंग त्रिम धेन' रापी ॥२॥

पज विपम भरायां सोक नालौ बहण,

उछल जल करायां घोक अण पार ।

हरी गज जेम जुग धेन बल हारतां,

बार नह तारतां लगी त्रिण बार ॥३॥

दपायौ दीन बंध पणौ नजरां' दहूँ,

सत त्रिण भरोसै जीव साजै ।

दंवीरण जेम तारण गरु ताल रौ,

धरद गोपाल रौ भलां बाजै ॥४॥

अर्थः—हे गोविन्द ! छलकते एवं तूझन पर आए हुए तालाब के प्रवाहित नाले में छिपे हुए मगर ने बहती हुई गाय का पीछा किया 'उम समय आपने' विरुद्धों का स्मरण कर, जिस प्रकार पहले (माह-मसित) हाथी को पार लगाया वही प्रकार इसे भी पार लगाया ।

तूझन पर आए हुए तालाब के मध्य भँवर के कारण उस गाय के पैर लड़खड़ा गए और डूबने ही वाली थी; परन्तु, हे दीनबन्धो ! आप ही उसे बचाने को दौड़ पड़े, जिससे सघने बड़ी कहा कि ईश्वर ने जिस प्रकार गज को बचाया, उसी प्रकार गायत्री रक्षा की ।

गुंभार ध्वनि करता हुआ तालाब का जलपूर्ण नाला जोर से प्रवाहित हो रहा था, उम में पड़कर वह गाय पत्थरों से टकराने लगी,

परन्तु हे हरि ! उस अराक धेनु को गज के समान पार करने में आपने विलम्ब नहीं किया । ॐ

हे गोपाल ! आपने दीनबन्धुत्व को सार्थक कर दिया । आपके ही भरोसे सन्त पुरुष आनन्द मनाते हैं । आपने गज की तरह गायको बचा कर अपने पिरुदों को श्रेष्ठता दे दी ।

ॐ नोटः—यदि धृष्टि होताही थी । उदयपुर के प्रसिद्ध तालाब पिछोला में घाने वाली नदी में बहती हुई एक गांव आई थीर जग, मेंबर तथा नाते के पत्तों से ढकाली हुई भी क्षणित छत्रया में तालाब से बाहर निकल गई । उनी घरना का इस गीत में कवि ने वर्णन किया है । यह घरना महाराणा जयसिंह के समय बटी थी ।

रचयिता—वेदा

— गीत ६४ :—

प्रहमा मिव कहै सुणो अज नायक,

अज दीठाँ नहीं खमा बघीर ।

अमरा पद दीजे आहीरां,

हर मोनू कीजे आही॥१॥

चत्रमुख ईस पारधै चत्रमुख,

फौतुहल गोकुल मुख काज ।

देवा अमा छाही देवाई,

महिराई पावां महाराज ॥२॥

वेदो धर हर चवै वीणती,

नरखै मधुवन तणौ नवास ।

ब्रज वासी कर्पलास वसारा,

विसन अमां दीजे ब्रजवास ॥३॥

जमना तट वंसी बट जोवां,

छांडां कदे न येक छिन ।

काम धेन कल-बल रद कीधा,

कलप धेन कदमां किसन ॥४॥

लछपर लार गोपियां लूटां,

मारग मही दही रा माट ।

इन्द्रलोक वैकुण्ठ ईलतां,

नंद लोक कृटरो नराट ॥५॥

अर्थ:- ब्रह्मा और शिव कहने लगे:-“हैं ब्रजेश हरि ! हम ब्रजको देख कर अर्धर से हो गए हैं। अतः आप अमर पद (देवताओं का पद) अहीरो (एक गोचर जाति) को दे दीजिए और आप हमें अहीर बना लीजिए । -

चतुर्मुख (ब्रह्मा) और शिव ने चतुर्भुजधारी विष्णु से प्रार्थना की कि हे भो ! गोबुल के मुख प्रद कौतूहल के लिए हम देवता अपना देवत्व छोड़ने के लिए तय्यार हैं । आपतो हमें मिथिर (एक गोप जाति का) पद दे दीजिए । -

वेद के धारण कर्ता (ब्रह्मा) और शंकर विष्णु के प्रति यिनय करने लगे कि मधुवन के स्थानों को देख कर हम लालायिन हैं । आप ब्रज वासियों को बैलारा में और हमें ब्रज में बसा दीजिए ।

यमुनातट और बंसीवट-को: हम टकटकी लगाकर देखते रहेंगे,
क्योंकि कामधेनु को ब्रज की कपिला गायों ने और कल्प वृक्षों को यहाँ
के कदम्ब वृक्षों ने, दे कृष्ण ! तुच्छ कर दिया है ।

हे लक्ष्मीपति ! येमा अक्सर दोजिए कि हम मार्ग में गोपिकाओं
से मट्टा (छाँद) और दही की हड्डियाँ लूटे । ऐसे कौतुक के सामने
इन्द्रलोक और वैकुण्ठ से भी हमें नंद लोक (नंद-गाँव-) सुन्दर मालूम
देता है ।

रचयिता—शक्तिदान छाछड़ा .

—: गीत ६५ :—

रघू पालतो संत खल' काज बैगाट' तो,
उरद खम काटतो' धके थरदींग ।
चख कियां चोल मुख धजर नख चाटतो,
जमे मद थाटतो उमे नरमिंग ॥१॥

सचंतो मगत पहलाद हरी साद मुख,
अचंतो अमुर अरि धदाकि अप्राज ।
ढोंगला हरणकुस तथा करी दचंतो,
उचतो बिहद हद बिहद अगाराज ॥२॥ .

नाग फुल कपठ पीठ पै धका नमावे,
दिमावे मुरां अमुरां कई दाव ।
आच रा पंजा साचरा बहावे,
रहावे बिनै पण दूहरां राव ॥३॥ .

सां लुळे पवजा गिळे गत्रां सुरंग,
 रुले घाखर तर अरु रीडे ।
 सळे छंछटा घटा ऊछट बारखित,
 हार अंत्रावलां गळे हीडे ॥४॥

ओभले लाख ग्रहमाण हर अमर अत,
 पढ दयत उतोले करे पीठो ।
 गालतो सत्रहरां घालतो गल ग्रजे,
 दूठ लंकाल विकराल दीठो ॥५॥

सुधा धर रमा अज ईस सर स थापे,
 सुथापे सुजस ग्रह पुर सत्रायो ।
 मार गज वडो अवतार वंढीमणो,
 असंत उथाप संत थाप थायो ॥६॥

अर्थ:—संत (ग्रहाद) की रक्षा एवं दुष्टों के नारा के लिए विराट् रूपधारी प्रभु अपनी टक्कर से स्तंभ को विदीर्ण करता तथा अरुण नेत्र, मुख पर रोष छाए हुए, तब चाटता हुआ नृसिंह (अपने) 'अपने अभय दान देने वाले' विरुद को निभाता हुआ सामने आ उपस्थित हुआ ।

स्मरण करते ही नृसिंह ग्रहाद को उच्च पद देता हुआ गर्जन करके दीर्घकाय दानव हिरण्यकशिपु का रक्त पीता और नारा करता तथा अपने विरुदों को निभाता हुआ दिखाई दिया ।

नृसिंह अपने पदांघात से शेष के फन एवं कंचुप की पीठ को नमाना हुआ तथा देव और दानवों के समस्त दुष्ट पर हाव देता एवं

थनूक कराघात करता हुआ दोनों (मरु-रज्जु एवं दुष्टनाशक) विरुद्ध निभाने लगा ।

गज-नाशक सिंह का रूप धारण किए हुए नृसिंह ने उस दानव को अपने पंजों से चीर कर नमा दिया और स्वयं रक्त-रंजित होगया । उसके द्वारा मारा गया यह दैत्य काटे गए बकरे की तरह तड़ फड़ाने लगा । उसके शरीर पर रक्त की धूँँ धूलने लगी । उसकी अंतर्द्वियों हार के समान नृसिंह के गले में मूलने लगी ।

(उनका भयंकर रूप देखकर) लक्ष्मी, प्रज्ञा, शिव और देवता-गण चकित होगए नृसिंह ने उनके देखते हुए दानव के शरीर को पुचल दिया और चूर कर पिट्टी बना दिया । उसने गर्जना करके शत्रुओं का नाश किया और भयंकर रूप धारण कर लिया ।

चन्द्रमा, लक्ष्मी प्रज्ञा, शिव और सूर्य आदि देवताओं को धैर्य धँधाया, त्रिलोक में अपना यश फैलाकर विनाशकारी सिंह का रूप धारण किया और दुष्ट दानव का नाश कर मरु (प्रह्लाद) को राज्य पर स्थापित किया और अपने स्थान को पुनः लौट गया ।

रचयिता—समरसिंह

—: गीत ६६ :—

भंगा रलकके हजार भलकके राकेस मोटे,

भलकके अमन नेत्र बखे धोम भाल ।

बलकके करट काने कोट सूर तेज बखे,

बलावता कंठ राजे नाग बकराल ॥१॥

वणें कंठ रुएड (मुएड) माल नील कंठ रेख वणें,

चाममे बसत्र वणें भभूत चढाव ।

वणें कटि मेखला शूल तथा टूकवणें,

वणें ओ महेश तणों अनेस वणाव ॥२॥

गड़क्के फेहरी सीह; दड़क्के वपम गोटे,

वप अमरत चद (भाग) दूकड़ा वसंत ।

फणाफार-हजारमें सेहस नाग कोट कावे,

केताई देवता रुद्र आदेश करंत ॥३॥

जटाधारी तपधारी नीलकण्ठ धारी जोगी,

धारी राग डड धारी नादमें धुनेस ।

उभियाण कतिपांण डोमरु धारीआं ईम,

मोगवारी जोगधारी जुरार धुनेस ॥४॥

समर्थ कहे एम सुप्रसन्न हों एम प्रभु,

हेल रंक गव करे असाधार हाथ ।

नंदी नाथ सुरांनाथ गरां नाथ कहे नाम,

नमो नमो रूप थारो पारवती नाथ ॥५॥

अर्थ:—हे समर्थ शिव ! आपके मस्तक पर गंगा को सहस्र धारा प्रवाहित है; समीप ही घाट चन्द्रमा प्रभा फैला रहा है; वहीं पर संपूर्ण ज्वाला फैलाता हुआ तृतीयनेत्र है; पास ही करोड़ों सूर्य सा तेज प्रसारित करते हुए कानों में कुँडल अमचमा रहे हैं और कंठ में भयानक सर्प सुशोभित हैं ।

कंठ मुँह माल एवं जूहर को नीलिमा से सुशोभित है, (गज)
त्वचा के वस्त्र और विभूति से शरीर, शोभाग्रमान है । कमर में मेखला
एवं लोह शलाकाओं से जुड़ा हुआ त्रिशूल हाथ में है । हे महेश ! आप
ऐसे साजों से शोभा पाते हैं ।

हे रुद्र ! आपके आतंक से एक ओर समीप ही देवी का सिंह
गर्जना कर रहा है और दूसरी ओर आपका वाहन नंदी धुकार रहा है ।
विष और अमृत चन्द्रमा और अग्नि (तीमरा नेत्र) विरंधी होते हुए
भी समीप २ घसते हैं । महान फन फैलाए हुए शेषनाग जैसे करोड़ों
सर्प आपके समीप शोभित हैं और कई देवता आपकी पण्डना
करने हैं ।

हे भूतेश ! आपको जटाधारी, तपधारी, नीलकंठधारी, नाद में
रागों के स्वामी, उमापति, कार्तिक स्वामी के पिता डमरु धारी, ईश,
भोगधारी, योगधारा और पुराण पुरुष कह कर लोग पुकारते हैं

इस प्रकार स्मरण करने से आप प्रमग्न होकर रंक को राग बना
देते हैं । आपके नंदीनाथ, देवताओं के स्वामी, त्रिजिज्ञापनि आदि कई
नाम हैं । हे पार्वती के स्वामी ! आपके ऐसे स्वरूप की मैं पण्डना
करता हूँ ।

रचयिता—साशदाम भूला

—: गीत ६७ :—

आसा नर किमन तणो तजि आलो, सरगहे मुख वणो संसार ।

छाँइ कितीपक वीर छीपवो, गुडी ऊफ़ीजी तणो गँवार ॥१॥

१ ॥ भूला शायी का भाष्य कि और भाष्य ग्रन्थ-तर्जित नगववा आदि ग्राम
का निवासी था । उसकी रचना सन् १७२२ के समय में उपपन्न है ।

माया तयों म पड़ महणारम, बुढ़ेस हर विलगा बिण वाह ।
 बार कीती सुरख बीशामो, छवती निहंग, तणी परछाँह ॥२॥
 माया छाया तणो मोदियो, ओबुध पड़े भोगे अवस ।
 पहियो बस तू तणे पड़ाई, बहे पड़ाई पवन बस ॥३॥
 हर सरखो बिसारज हेतू, तू जाणे बुध तूफ तणी ।
 भमती पड़ती तणे भरोसे, पांम टाल बाहम घणी ॥४॥

हे मूर्ख प्राणी ! आशा-युक्त रूपी कृष्ण का सहारा त्याग कर तू सांसारिक सुखों को सराहता है; परन्तु वह तो उड़ती हुई पतंग के समान है । उसकी छाया नाम मात्र की है ।

हे मूर्ख ! माया रूपी महासिन्धु में तू मत पड़ ! तू हरि के हाथ पकड़े बिना उसमें डूब जायगा । अन्य का सहारा तो उड़ती हुई पतंग की थोड़ी सी छाया के समान है ।

हे अशोध ! माया की छाया पर मोहित हुआ तू कर्मों का भोग अवश्य भोगेगा ! तुझे परमरा होकर जैसे पुरवाई पवन के सहारे मादल चलता है, उसी प्रकार (झुलता हुआ) चलना पड़ेगा ।

हरि को भूल कर तू अपने को बुद्धिमान मानता है और भ्रमण करती हुई (उड़ती हुई पतंग) के भरोसे ताप मिटाना चाहता है, यह तेरा एक मात्र भ्रम है ।

—: गीत ६८ :—

त्रिषा तन तटि त्रिषा तन तावड़,
 होणि वियोग न रोग न होइ ।

मोन् तठा चाखिजे माइव,
कालो कहे न गोरो कोइ ॥१॥

खेधन वेध विगेधन खुषिया,
हृइ करम तन कालक मोम ।
मोसिइ सँवा सँ मदखदन,
खक रुदन तन रावन गेस ॥२॥

प्रीसण ताप सराप न पाप न,
अटक हटक तन चटक अंधार ।
वासि मुनौ तेयि ब्रजवामी,
खटक न कटक खंधार ॥३॥

ज (रा) न जम डर मरण न जामण,
पीड न परिमव पय स पयाण ।
विर धर गिर मुनी वासिई तिगि गिहि,
दूत दुकाल न आण न दाण ॥४॥

अर्थ:—हे माधव ! मुझे ऐसे स्थान पर बसाइए, जहाँ न दुष्णा, न प्यास, घूप, न शयिष्य का भय न विरोग, न रोग और न काले और गौर वर्ण का भेद हो ।

हे मधु सूदन ! मेरे से जैसी भी सेवा बन पड़ी, उसको मोचते हुए तू मुझे पीड़ा, मगड़े, विरोध, सुधा, घुरे कर्म, कलंक, उलाहना, स्वामि-कृपा के लिए रोना और राजाओं का क्रोध महन करना आदि संसर्गों से बचाना ।

हे ब्रजवासी (कृष्ण) ! मुझे निवास के लिए ऐसा स्थान देना—
जहाँ शत्रुओं का भय न हो, न आप और पाप ही हों, न बाधा न
अंधेर हो, न खटका (खतरा) हो न भटकना ही पड़े और न कन्धा-
रियों (यवनों) के दल ही की आशंका हो।

हे गिरिधर ! मुझे ऐसे गृह में स्थान देना जहाँ जरा, यमका
भय, आयागमन का चक्कर, पीड़ा, अन्य लोक में जाना, चुगलखोर,
दुष्काल, किसी की दुहाई और मादकता न हो।

—: गीत, ६६ :—

पश्चिमायै कांड प्रीति पालीतो,

जीव गमार विचारे जोइ।

काठी ग्रहे शोलगत केसव,

तो काठीयाँ न होबत कोइ ॥१॥

द्वारपाल नहँ देत दुहाई,

घर काजि किरत न घरा धरि।

हरी पावदी उमालत हाथे,

हाथ न माँहत राइ हरि ॥२॥

पद दारे (द्वारे) द्वारे पालीतो,

मम करि खुणस विचारि मनि।

इम जाँ करत अनैत मुह आपी,

इम न करत आगली अनि ॥३॥

अथपति द्वारि अम्हीण आतम,

राखै जिणि तिणि ठोड़ रहि ।

टहल करत हरि महल तणी तू,

सहल ह्वत तो महल सहि ॥४॥

अर्थ:—हे मूढ़ प्राणी ! तू परचाताप क्यों करता है । यदि तू ठीक तरह से सोच तो तू ईश्वर के द्वार पर योग्य बाने वाला है, इतना पूर्वक केराज का स्मरण करे तो तुझे कोई भी कलंकी नहीं कह सकता ।

हे जीव ! प्रभु के द्वार पर दुहाई देकर रोकने वाला कोई द्वारपाल भी नहीं रहता, न घर की इच्छा से प्रत्येक घर पर ही विचारण करता पड़ता है । हरि के मन्दिर की सिद्धियों को छूकर तू अपने हाथों को पवित्र करले तो फिर राजाओं के सामने हाथ भी नहीं पसारना पड़े ।

हे मूढ़ ! पराये द्वार पर दुकड़ पाकर गर्व न कर, मन में सोच, यदि यह दीनता अनन्त प्रभु के समक्ष करे तो तुझे किसी दूसरे के सामने इमप्रकार दीन होकर न रहना पड़े ।

हे आत्मा ! यदि तू राजाओं के द्वार पर गया तो वे जहाँ जैसा भी स्थान देंगे वहाँ रहना पड़ेगा, हरि के राज प्रासाद की शरण लेने पर तो तुझे अनायास ही उन्नत महल रहने को मिल जायेंगे ।

रचयिता—सूर्यमल आशिषा

—: गीत ७० :—

सग्य करो नर सेव मगवान समरत्थ गी,

हे सदा सहायक प्राण्य दाता हरी ।

१ यह आशिषा रागात वा वाण्य करि या । यह मान करिषी (देनाइ) निशानी आशिषी का पूर्वक या । इसकी रचना १८०० के अंतु थीर १८०० १४०० के प्राण्य की है ।

डावड़ी जिवायो मीच जण छं डरी,

रूप चत्रभुज करी बेल रायसिंघ रो' ॥१॥

सादही "राय" बल नोकर साम छं,

हरामी करी धर लोम चित हाम छं ।

चाटण धारियां गुल जकण चांम छं,

दया कर छत्री यक छुडायो दाम छं ॥२॥

जेण चाकर कछो बचन सांचा ज्युंहीं,

निमल अनखाय कर कदे बढलूं नईं ।

स्याम गढभोर रो बीच दीधो सही,

चित दगो करण री हेक पख में चही ॥३॥

२ सारंगदेवोंत रायसिंह सादही का निवासी था । उसका एक अवामसिंह नामक ११ वर्ष का पुत्र था । रायसिंह के पास एक नौकर था । उसने उसके साथ पहली भी विरवातघात किया; पान्नु रायसिंह ने समा कर दिया । नोकर ने मरिच्य में विश्वासघात न करने की ईश्वर की साक्षी करके शपथ खाई । उसके बाद उस पापी ने अपने स्वाधी के पुत्र, जिसके शरीर का साधारण जेवर थे, को लालच में आ मारकर मार दिया । मगवान ने मक्ति के बश में होकर उस गधे हुए बच्चे को निकाला और जीवनदान देकर उसके माता पिता के पास पहुँचा दिया । उस बच्चे के गले पर लुटी में कानों के चिन्ह रह गए । महायणा स्वरूपमिह को इस घटना का पता लगा । महायणा ने उस बच्चे को बुलाया और मगवान अनुभुज के स्वर्ण के कारण उसके गले की पानी से धुलकर पिवा । घटना वि० सं० १६०४ में घटी । इस पद्य का रचयिता कवि उस समय मौजूद था अतः यह पद्य उस घटना का प्रमाण है ।

सुतन रायसिंघ रो जवानों नाम सभ्क,

एकदश बरस री अवसना गणी अज ।

ले गयो बीड़ मझ चोरटो नर नलज,

मांजणो लंकगढ न जाणो चतरभुज ॥ ४ ॥

देखवा रुंख चढ भालियो चहुँ दस,

नजर कोय मानवी न आयो बीत निस ।

उतरे रुख छुं रीस मरियो अवस,

एक लत इयो लत बहीजे जाण अस ॥ ५ ॥

दांत ममतक छेद कैंठ सारे दियो ।

गण सिंगु नेसमझ बहत भू गाडियो ।

च्यार दम रुप्यारो माल लेण मन चक्षो,

गोल नरमे थको गांम मांहे गयो ॥ ६ ॥

दो घड़ी दिवस रहतां चंघव-दीन रा,

राम लछमण जके नाथ पुर तीन ग ।

रूप चरभुज दिहैं उरां भूषी नरा,

महा अरवार चौबीस गिहं मीन रा ॥ ७ ॥

गजतशी अरज सुण उबारे लियो गज,

अधक उण हूँतयां विना कीषां अरज ।

श्रीपहर निसयो तिण सिसु देह तज,

राम लछमण किया जीवना खोद रज ॥ ८ ॥

श्री सु कर परस सोहो अंग किया सावता,

जल ब्रखा पूछ पावे किया जावता ।

बद कल्प अनेका दीन बद छावता,

फेर कीधा जगां माइया फावता ॥ ६ ॥

बांह दिहुं टावियां गांम मभ बालका,

पधारे साथ जग करण प्रतपाल का ।

करधणी पणो खेरे रदन काल का,

मेल घर कुसल सिसु घरण बनमाल का ॥ १० ॥

दुसट कत कियो जिण नूं सज्या दराई,

काट नासा ऊमे कूंप चख कराई ।

सत वरत देख सोहीड़ां गरज सराई,

हेक छन माँभ चंता सरब हराई ॥ ११ ॥

आच ग्रह गरीधनवाज बिप अधारे,

ग्रह तणी क्रीत भुवलीक बिच बधारे ।

सुरां कज जेम सुभ कज नरां सुधारे,

पछे निज धांम त्रयलोक पत पधारे ॥ १२ ॥

हाजरी उटैपुर देण सारंगहरा,

आय त्रप कदम जे दसम लग ऊपरा ।

भाल परचो प्रसन हुंवा नर भूप रा,

रीभ पावा करां भूप सारूप रा ॥ १३ ॥

चत्रभुज रूप रिबमल कृपा चहीजे,

क्रीत कथ सुणी देखी जिका कहीजे ।

लखां कोड़ां जुगां बिजत जस लहीजे,

राण सारूप रे साय नत रहीजे ॥१४॥

अर्थ:—कवि कहता है कि हे मानव ! सभी को चाहिए कि उस ममर्थ भगवान की सेवा करें । यह प्राणशता हरि मदा सहायक है । उसने मृत बालक को जिला दिया । उसके समस्त मृत्यु भी भयभीत होगई । ऐसे प्रभु रूपत्री एवं चतुर्भुजजी हैं, जिन्होंने रायसिंह की महायना की ।

उम मादही गाने रायसिंह के नौरु ने लोभ में आकर अपने रयामी से नीचता की । अतः जेरवन्द (घोंड़े के जबड़े तले सुहरे से बाँधे जाने वाले चमड़े) से उम दासी पुत्र को मार दी जाने पर एक राजपूत ने दण्ड स्वरूप द्रव्य देकर उसे छुड़ाया ।

उम अपराध के बाद अभी मेरक ने अपने स्वामी रायसिंह को बचन दिया कि मैं अब आपका अग्न त्याकर कभी भी आप के साथ विश्वासपात नहीं करूँगा । आपके मेरे बीच में गढ़वाल के स्वामी (भगवान् चतुर्भुज) साक्षी हैं । इसके पन्द्रह दिन बाद उम नीच ने स्वामी के साथ पुनः विश्वासपात करना चाहा ।

उस समय रायसिंह के पुत्र जयानसिंह की आयु ग्यारह वर्ष की थी । उसे कुमला कर वह चार प्रवृत्ति का निर्लज्ज सेवक बीड़ (भूए-भूमि) में ले गया । वह उस समय संका—दुर्ग के नाशकतां चतुर्भुज (भगवान्) को भूल गया ।

कोई देय न ले इस विचार से उन दुष्ट ने वृष पर पड़ चारों ओर देगा । उसे कोई मनुष्य आता जाता दिखाई नहीं दिया इतने

में रात होने का समय भी निकट आगया । तब वह पापी वृक्ष से उतरा और क्रुद्ध होकर बच्चे पर इस प्रकार पद-प्रहार किया, जैसे घोड़े ने दुलसी मारी हो ।

बस दासी पुत्र ने बस बालक के भस्तक और दाँतों को छेद दिया तथा गले पर कटारी का वार किया । फिर भय से उसे अशोध बच्चा ममक जमीन में गाड़ दिया । उसने बच्चे के पहने हुए थोड़े से मूल्य वाले आभूषणों के लालच में यह हेय कार्य किया और गाँव को लौट आया ।

दो बड़ी दिन शेष रहने पर, धीनवधु, रामदमण के स्वरूप रूप-देव एव त्रिनांकीपति चतुर्भुज जो मनुष्यों के हृदय में नरेश्वर स्वरूप और संसार जिसे मत्स्य धाराद आदि चौबीस अवतार मानता है ।

ऐसा प्रभु गज की रक्षा के लिए पुकारने पर आया; परन्तु बच्चे की आर से पुकार ने वाला कौन था ? अतः वही प्रभु बिना पुकारे ही आ उपस्थित हुआ और दिन के तीसरे पहर जिन बच्चे के प्राण-पंखरू उड़ गए थे, उसे गह्वरे से बाहर निकाल पुनः जीवित कर दिया ।

अपने हाथों से स्पर्श कर उसके कटे कटे मारे शरीर को ठीक कर दिया । फिर उसे प्यार कर पानी पिलाया । कहते आए हैं कि यह दोनवधु अनेकों कल्पों के अन्त में मन भाती गृष्टि की रचना करते रहते हैं । बच्चे को बचा कर उसने अपने उसी कर्तव्य का परिचय दिया ।

समार का पोषण करने वाला वह प्रभु (रूपजी और चतुर्भुज) अपने हाथों में उम बच्चे के हाथ पकड़ कर उसे गाँव में ले आये । जिन नीच दासीपुत्र ने बच्चे के नारा हेतु काल को निमन्त्रित किया था, उसने उसके दाँत तोड़ दिए और उम वनमाल धारी ने बच्चे को सदाशिव उसके घर पहुँचा दिया ।

नाच फर्म करने वाले उस दृष्ट (दासीपुत्र) की नाक कटवा दी और दोनों 'पॉल' फुड़वा दी। इस प्रकार प्रभु द्वारा मत्स्यवन पालन को देम कर सब ने प्रशान्ता की और क्षणमात्र में चिन्ता दूर कर दी।

अपने विरुद्ध 'सरोष निवाज' का पालन करते हुए त्रिलोकपति ने अपने हाथों से बन्धे की रक्षा कर अपने विरुद्ध में वृद्धि कर दी। जिस प्रकार देवता और मनुष्यों के शुभ कार्य की पूर्ति के लिए प्रभु आता रहता है, उसी प्रकार सहायतायें आकर वह अपने स्थान को लौट गया।

बठ सारंगदेवोंन रायमिह दशहरे पर नाचरी देने को उदयपुर आया। इसकी ईश्वर के प्रति मन्त्री लगन और प्रभु कृपा को देख कर महाराणा स्वर्णमिह बड़े अमनने हुए (और उसके बन्धे को, जिसे ईश्वर ने बचाया था, दुन्नाकर महाराणा ने) बपहार दिया।

कच मूर्धमल कहता है कि हे हनुदेव गय चतुर्भुज प्रभो। आपकी कृपा चाहता हूँ और भावकी कीर्ति की ग्यानि जैमी मैंने देखी और सुनी है, उसी का मैंने इस गीत (पद्य) में वर्णन किया है। इसी प्रकार आप लाभ और करोड़ वर्ष तक विजय और यश प्राप्त करते रहें और महाराणा स्वर्णमिह के सहायक बने रहें।

रचयिता सोम

—: गान ७१ :—

कोटि ब्रह्मंड राण मांहि भौंई करै,

अगम है निगम ताद नेति नेति उवचनै।

ध्यान मुकदेव नाद जै मन घरं,

धाद गोवाल्यां बाँठ काँधे धरे ॥१॥

कर्या प्राक्रम ताइ सेस न सकै कली,

वँछै जै चरणरज सीसि ब्रह्मावली ।

भाव घण गोपियां कृसन प्रीत्यै मली,

साद छै कदम चढि पीय पी-समली ॥२॥

जजै जाइ कोटि जिग वेद मंत्र ब्रह्म जण,

घृत पुलत हविल द्रव ज्याग होमंत घण

नाम जै दीनदंड तेणि काजि नारयण,

जमेते जसोमति (मात) हत्थी जमण ॥३॥

गाइ गुण सारदा पार न लहे गणै,

भाव करि नाम मंत्रानि तोइ ब्रह्मा भणै ।

कइछि कन्ह पीतपट बाँधि पलवट कणै,

आवि दूहै सुरभि नंदनै आगणै ॥४॥

देखि भ्रूभंग मन काल आंशति डर,

अछै कुण मात्र जगि देव दाखव अवर ।

मगत वल्लल विरद तूझ हरि तेज भर,

सरण दै "मौम" नू कहै राधा-सुवर ॥५॥

अर्थ:—यह चाहे तो करोड़ों मन्त्राण्ड का अपने हाथों से एक तण में नाश और निर्माण कर सकता है । वेद, पुराण, शास्त्र जिसे "नेति-नेति" कह कर घर्षण करते हैं, जिसका ध्यान शुकदेव और नारद जैसे ऋषीश्वर मन में धरते हैं । उसी भ्रमु के गले में गलगोड़ी डाल कर ग्याल विचरण करते हैं ।

उसने जो पराक्रम किए, उसका चरित्र शेषनाम भी नहीं कर सकता। जिसके चरणों की रज मन्मथ पर चढ़ाने के लिए स्वयं प्रह्ला भी इच्छुक है। ऐसे कृष्ण के साथ ज्यामा गोपिन्दायें सावयुक्त प्रेम पालन करती एवं कदम्ब पर चढ़ कर पिऊँ पुकारती हैं।

कोटि युगों तक प्रह्ला घृतादि यज्ञ सामग्री होनता हुआ, जिसकी वेद मंत्रों द्वारा जय-जयकार करना रहता है जिसकी दीनबन्धु नारायण कहके पुकारते हैं, वही प्रभु माता यशोदा के हाथों भोजन करता है।

जिसके गुणों का पार शारदा भी नहीं पा सकती, भावनायुक्त प्रह्ला जिसका वेद मंत्रों द्वारा नामोच्चारण करता है, वही कृष्ण कमर पर कढ़नी और कटि-बंधन आदि कस कर नंद के आँगन में घेनु दुहाता है।

“सोम” काव कहता है कि हे हरि! आपकी भृश्टी चढ़ा दृष्टि देख कर मन में अतक को भय उत्पन्न होता है; तब देवता और दानवों की तो घात ही क्या? आपका विरुद्ध “अकथ्यमल” है। हे राधा-वल्लभ! आप मुझे भी शरण दीजिए।

गचयिता:—हरि

—: गीत ५२ :—

पलन की जेज आवियो पालो,

सिंधुर री करियाद सुणे।

आवे धणी जसी पल आवो,

तीकम सावे संत तसे ॥ १ ॥

पदतां सारी वार पंचाली,

विनती मुण सावरियो वीर।

आखे हूत अनोखी आतुर,

चत्रभुज ते पूरी अत चीर ॥ २ ॥

धरणीधर जाटा धंता रो,

अन बायां वन पूरी आस ।

साटे सेंग तणे ते साहेव,

खजमत कीधी होय खवास ॥ ३ ॥

नरसी तणा पूरिया नामां,

नकद रुपय्या दीनानाथ ।

लायो गरै बालद ललकारे,

सत कवीगे करण सुनाथ ॥ ४ ॥

पलरै द्वार छड़ी ले बैठो,

दे छत्र कियो भभीपण दास ।

कोडां धणी सदामो कीधो,

पीदो दूध नामदे पास ॥ ५ ॥

धू प्रहलाद तणो धणियापो,

कीदो ज्यू करतार करै ।

सबळे नाम धणी सांमलिपो,

सबल ई सबला काम सरै ॥ ६ ॥

तू पगले पगले तीकम,

ऊमो भगतां भीर युंही ।

आवे भीर करेवा आतुर,

जरणी बालक काज ज्युंही ॥ ७ ॥

हो ब्रजनाथ मगत रा हेतु,

घरणीघर ऊजलाद धरणी ।

दीन दयाल "हरो" यूं दाखे,

तू लज राखे मूज तगो ॥ = ॥

अर्थ:—हे त्रिविक्रम (वामन) ! आपने गज की पुकार पर पल मात्र का भी विलम्ब नहीं किया । अति शीघ्र पैदल ही दौड़ पड़े । उस पुकार करने वाले भक्त (हाथी) की रक्षा करने आप इस प्रकार दौड़ें जैसे स्वामी अपने सेवक के लिए दौड़ता है ।

हे चतुर्भुज धारी श्याम ! पांचाली पर घापति पड़ने पर उमने हे श्याम ! फट कर मुकार की । तब आप अरुण दग से दौड़ पड़े और उमका घोर बढ़ा दिया ।

हे घरणीघर स्वामी ! बिना श्रेण ही मगता जाट के वृषि उम्पन्न करदी और सेना नाई के बढ़ते स्वयं जाकर घोर की ।

हे नाथ ! नरसी महता की पौत्री के विवाह में आपने मातुल पक्ष की रस्म को नष्ट करवा लूच करके अदा किया और कवीर के यहाँ टांहा घेर कर ले आए ।

हे प्रभो ! आप बली के द्वारपाल बने, विभीषण के मस्तक को एत्र से सुशोभित किया, मुद्रामा को करोड़ पनि बनाया और नामदे के यहाँ पय-पान किया ।

हे मांघरे ! आप मवल स्वामी हैं । आपने ध्रुव और ब्रह्माद पर स्वामी के समान ही कृपा की और जैमा आपका नाम है, वैमा ही अपने अरुण कर्म किया ।

हे त्रिविक्रम ! आप पद २ पर भक्तों के सहायक होकर खड़े हुए हैं और सहायता के लिए शीघ्र ही इस प्रकार दौड़ कर आ जाते हैं, जैसे शिशु का पुकार पर माता दौड़ कर आती है ।

“हरा” कवि कहता है:—हे ब्रजपति, घरणीधर, पवित्र स्वामी, भक्तवत्सल, दीनबन्धु ! मैं आपसे यही विनती करता हूँ कि आप मेरी लाज रलियेगा ।

रचयिता—हरिसिंह जगन्नाथ

:— गीत ७३ :—

आसण मज्झाल बाघंवर ओडण,

भूपण पिनेंग अरोगण भंग ।

भलहल माल सुधाकर मलके,

गुमट जटा मझ खलके गंग ॥१॥

गोली नाद भूलका सांगी,

मांडअरोड भूत गण साथ ।

माला मूंड फवे गल मांहे,

नमो विसंवर गोल्नानाथ ॥२॥

उमिया संग मूल घर आवध,

कर प्यालो ना लीध कपाल ।

बारमवार अरोगण धूटी,

मदन-अरी मातो मतवाल ॥३॥

शंकर—देव निवाजण सतां,

मसमी अग डिगम्बर मेप।

मुर तेतीम कोट कड सारा,

थाहम्बर थारा आदेस ॥४॥

अर्थ:—हे शिव ! आपके पास गज एवं सिंह की त्वचा ओढ़ने और बिछाने को है। मर्प ही आपके भूषण तथा पीने को भंग है। आपके ललाट पर चन्द्रमा चम-चमा रहा है और जटा जूट से गंगा प्रवाहित हो रही है।

हे विरधम्बर भाले शिव ! मैं आपकी वन्दना करता हूँ आप शैलीका नाद करते हुए शोभित हैं। आपके भोले में सिंगी तथा आप घुपभ पर आरुह हैं। मूत ही आपके साथी और आपके गले में मुण्ड-माला शोभा पा रही है।

हे मदनारि ! आपके माथ उमा है। त्रिशूल ही आपका शस्त्र, नर कपाल ही आपके पात्र और चार २ आप भंग आदि का पान करके मतवाले बने रहते हैं।

हे शंकर ! आप संत और देवताओं पर कृपानु हैं, आपके अंग पर विभूति तथा आपका स्वरूप दिगम्बर है। आपके ऐसे ठाठबाट को देख कर तैंतीस ही करोड़ देवता प्रशमा करते हुए आपकी वन्दना करते हैं।

रचियता—हमीर^१ मेहड़

:- गीत ५४ :-

जिण नाम लियां दुख दालिद्र जाये,

घणो हुवे सुख लाम घणो ।

बाधे मानवि राम बीछड़े,

तिसो नाम श्री राम तयो ॥१॥

बुरो विघन वेद नहँ विआपे,

मिटि अघ पावन हुअे मन ।

जिहड़े भजन संसार जीपिजे,

भगवत रो इहड़ो भजन ॥२॥

भूत प्रेत डाकणि डर मात्रे,

दुरदिन आवे नहीं दिसो ।

अकरम टले चढ़े निति ऊजम,

अघ्रितपांन हरिनाम इसौ ॥३॥

सगती संपती सुमति सांपजे,

दूर रहे दुग्मती दुयण ।

थिये हमीर भीर जिम थारी,

गिरधारी रा गाइ गुण ॥४॥

१ यह कवि मेहड़, शाखा के चारणों में हुआ है । इनका स्थान आधपुरा जिला के ग्राम सस्था आदि स्थानों में होना सात होता है ।

जिसके स्मरण मात्र से दुःख दारिद्र्य दूर हो जाता है और विशेष सुख एवं लाभ की प्राप्ति होती है, मनुष्य बाधाओं से विमुक्त होता है, ऐसा एक मात्र राम नाम है।

जिसके कारण बुराई, विघ्न और वेदना व्याप्त नहीं होनी तथा पाप क्षय होकर मन पवित्र हो जाता है। ऐसा एक मात्र हरि कीर्तन ही सर्वश्रेष्ठ है।

हरि का नाम अमृत तुल्य है, जिसके स्मरण से भूत, प्रेत और डाकूनी का भय नहीं रहता, चुरे दिन सामने पटकने तक नहीं, कुरूप मिट जाते तथा मुख पर तेज छा जाता और संसार में सफलता प्राप्त होती है।

हमीर कवि अपने को सम्बोधित करके कहता है कि नृगिरिधर का गुण गान करता रह, जिस से यह तेरा साथी बन जाय और तुझे सब प्रकार की सम्पत्ति एवं सुमति प्रदान करे तथा तेरे से शत्रु कभी सुमति दूर हो जाय।

रचयिता 'दुकमीचन्द' खड़िया

—: गीत ५४ :—

करी अंग विकला हुवां करी सबला करी,

अंगे अकला करी मगन अमला।

करी तन बाढ तन ग्राह तंडला करी,

करी राखल गयो घरी कमला ॥१॥

१ यह कवि रचयिता राजा के वाक्यों में वि० सं० १८०० ई. के अन्तर्गत हुआ मान पड़ता है। इनका स्थान रोगावृत्ति होता प्रतीत है। इनकी कविता पनेछी एवं पोखरी है, यह अतिशय कवि है।

थल सारंग निखंग कज पलंग धित,

विहंग पत न पूगो हाल बांसे ।

हाल ऊचारवा निहंग छबतो हरी,

पाल अरधंग गो मतंग पासे ॥२॥

॥पोत (पीत) पट खुटं हैं जैत मुकुट अटपटे,

सटपटे अंग मग कटे सीधो ।

अह अरी फटे लहरी कमल ऊछटे,

रटे गज जठे कज सटे रीधो ॥३॥

हर हरी बिहरी करी गत हरी हम,

रत मगत परी चीत गहतो ।

करी दिव विमाणा हरी आगल करी,

करी निज पुरी गो हरी कहतो ॥४॥

अर्थ:—भयंकर माह द्वारा हाथो को जल में डुबा देने पर उसके अंग क्याकुल होगए, उस पवित्र भक्त(हाथी)ने ईश्वर के प्रति दुःखद पुकार की, उसी समय उसको सहायता करने लक्ष्मीपति लक्ष्मी को छोड़ कर दौड़ पड़े ।

भोजन के लिए परोसी हुई थाली, धनुष, बाधा, शय्या और पर्यकादि ज्यों के त्यों धरे रह गए । लक्ष्मी के रोकने पर भी न रुके और पोछे से दौड़ कर गरुड़ भी नहीं पहुँच सका । इतने शीघ्र हरि आकाश मार्ग से होते हुए गज को उबारने को जा पहुँचे ।

पीत पट को भी हट न कम सके, वैजयंती माला एवं मुकुट भी अटपटे रूप में ही शरीर पर शोभित थे, आतुर हो प्रभु सीधे मार्ग पर चल पड़े, गरुड़ भी उनसे बिछुड़ गया, ममुट की तरंगों में कमल ऊपर

नाचे हो रहे थे। ऐसी स्थिति में गजध्वी पुकार सुन हरि द्रवित होगा।

“हे हर, हरि, धिहारी” ! उच्चारण करने ही हाथी बिना रहित हो मोक्ष में लीन होगया। ईश्वर ने उसे अपने समझ ही दिमाना रुड़ कर दिया, जिससे वह हाथी “हरि हरि” उच्चारण करता हुआ प्रभु के स्थान स्वर्ग को चला गया।

—: गीत ७६ :—

चंगी मात्रियां पोसाक टाल जनेव चपेटा वाला,

आभुगं भपेटा वाला हनेव उथाइ।

उबेलु सांकड़े मतां इन्द्रजीत खेटा वाला,

बांकड़ा लपेटा वाला नमो चववाइ ॥१॥

कला चन्द्र भलमल कु डला मलक्के कानां,

हीदि रूप मटलां रुलक्के डार हीर।

धावा माग बायां हु ता रागसां जीतया थया,

बधू रागचद्र तया लछंमया दीर ॥२॥

मेल संडा उलालया टालया विषन सतां,

अमिमनियां चालया कुर्मडानदां धुमंडां चहांन।

लालधवा वाला थंडां रालया विष्म लंका,

जपो लंबी भुजा वाला पालया जहांन ॥३॥

खेध लाग वेध बाणा हीकोट गाडला खलां,

सिंधां नाडला ज्यूं जना तारणा सादेस ।

करंतां पुकार सरे चाडला अनेक काजां,

अजोध्या नाथ रा भाई लाडला आदेस ॥४॥

अर्थ:—मुन्दर बस्त्राभरणों से सुसज्जित, ढाल कसे हुए तथा हाथ में तलवार ग्रहण कर असुरों पर वार करते हुए अनेक असुरों का नाश करने वाले, आपात्त आने पर वचाने तथा मेघनाद से जुटने वाले और बांकी पगड़ी बाँधने वाले हे चतुर्भुज ! मैं आपकी वन्दना करता हूँ ।

हे रामचन्द्र के वीर-भ्राता लक्ष्मण ! आपके कानों में चन्द्र फिरण की तरह कुण्डल चमचमा रहे हैं । आपके सुन्दर शरीर पर हीरों का हार लटकता हुआ झूल रहा है । आप शस्त्राघात करके बहुत से राक्षसों पर विजय पाने वाले हैं ।

हे प्रलम्बबाहु, लाल ध्वजा धारी, जग पोषक ! आप अपने भाले और खड्ग से आघात करते हुए संतों के विघ्न दूर कर देते हैं । टंकार करते हुए धनुष द्वारा तीर चला कर दनुज समूह को नष्ट करने वाले आपही हैं ।

हे अयोध्यापति (रामचन्द्र) के भ्राता ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ । आप पीछे पड़ विपत्ती के दृढ़ वीरों को बाण-प्रहार से वेधने तथा अपने भक्तों के लिए भवसिंधु को छोटी तलैया का रूप देने और पुकार करते ही अनेकों काम भली प्रकार से सिद्ध करने वाले हैं ।

